सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

एकविंशतिस्तरंग:

अथ उग्रगीताप्रारंभः

उत्थानिका

★

दोहा—उग्र गीता सार है, सुकृत दया लिखाय ।
करे दूरि अज्ञान को, अञ्जन ज्ञान समाय ॥
करे दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सो देइ ।
बलिहारी वे गुरुनकी, हंस उबारि जो लेइ ॥

सोरठा—अंजन ज्ञान है सार, रहै नहीं अज्ञानता ।
तेहि गुरुकी बलिहार, मेरी सदा प्रणाम है ॥

चौपाई

प्रथमें बन्दौं सतगुरु पाया । बंदी छोर करहु तुम दाया ॥
धर्मदास बिन्ती अनुसारा । दया करो दुख भञ्जनहारा ॥
अविगतिकी गति जाइ न जानी । अहो दयाल सो कहौ बखानी ॥
वेद शास्त्र सब जगत बखानै । गुप्त तत्त्व कोइ कर्म न जानै ॥
जब लगि वेद भेद नहिं जानै । तब लगि शब्द न हितकर मानै ॥
वेद विचारि भेद जो जानै । सत्य शब्दमें मोहि पहिचानै ॥
जीव जन्तु माया लपटाना । ताते वेद भेद नहिं जाना ॥
करवा चौथ औ होरी पूजै । परम तत्त्व कैसेहु नहिं बूझै ॥
देवी देव बहु पूजा ठानै । सार शब्द हृदय नहिं आनै ॥
तीरथ व्रत महँ तन मन पागे । सद्गुरु शब्द न कबहू लागे ॥
तेहिते सब जग गयो बिगोई । जनम काल धरि सबही खोई ॥
तुम सद्गुरु हौ मुक्ति के दाता । अगम अपार कहौ विख्याता ॥
सद्‌गुरु मोहि कहौ समुझाई । जाते मनकी संशय जाई ॥
श्रीकृष्ण गीता जो भाषा । सो समर्थ सुनबे अभिलाषा ॥
केहि विधि अर्जुन रणमहँ नयऊ । केहि विधि ताहि मोह पुनि भयऊ ॥
केहि विधि कृष्ण ताहि समझाये । सो समर्थ कहो भेद बताये ॥

दोहा—हे दयाल बिन्ती करौं, रहों चरण चितलाय ।
गीता अर्थ भेद सब, मोहि कहौ समुझाय ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । तत्त्व भेद है गुप्त निवासा ॥
वेद भाव संसार पसारा । ताते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
बहु व्यवहार रच्यो बहु भांते । जगत सकल भर्मत है ताते ॥
वेदतत्त्व तुम सुनो सुजाना । अर्जुनगीता कृष्ण बखाना ॥

सो मैं तुमसन कथा सुनावों । तत्व भेदका मता बुझावों ॥
शास्त्र वेद पुराणन माहीं । गीता मता तत्व जो आहीं ॥
तत्व मता जो कृष्ण सुनाया । सद्गुर तो कछु अगम बताया ॥
तत्व निरतत्व दो होते न्यारा । धर्मदास तुम करहु विचारा ॥
जो संशय गीताके होही । सो अब सकल सुनावों तोही ॥
गीताका अब गम्य बतावों । सार शब्दका भेद सुनावों ॥
जहँ देखौ तहँ आप निवासा । सबते न्यारा सबमें बासा ॥

समै–तत्व मता है गीता, वेद पुराणमें सार ।
ताते अगम अपार है, पूरण शब्द हमार ॥

अथ श्रीभगवद्गीताप्रथमोऽध्यायप्रारम्भः

कबीर उवाच

अब गीता मैं कहौं बखानी । कृष्ण कहा सो अर्जुन मानी ॥
ताते न्यारा शब्द बताओं । तत्त्व मांहि निहतत्त्व लखावों॥
जब यह सृष्टि भई महि भारा । तेहि मारण हरि मता बिचारा॥
बंधु विरोध कियो हरि जबहीं । कौरो पाण्डु जुरे दल तबहीं ॥
अर्जुन रथ चढि आये तहवां । दोउ दल युद्ध रचो है जहवां ॥
कृष्ण सारथी रथ जब हांका । तासों अर्जुन ऐसो भाषा ॥

अर्जुन उवाच

दोऊ दलमें ले रथ राखों । दूनो देखौं अपनी आँखों ॥
सुनिकै कृष्ण ऐसे ही कीन्हा । दोउ दल बिच रथ राखै लीन्हा॥
रथ जब दोऊ दलमें राख्यो । भयो मोह अर्जुन अस भाख्यो॥
ये सब बन्धु हमारे आही । हे प्रभु मैं मारौं कहु काही ॥
भाई चचा भतीजा सारा । कैसे मारौं कुल परिवारा ॥
जहँ लग देखों दोऊ सेना । आपन कुल मारौं केहि लेना ॥
विधवा होय है सकला नारी । ऐसो दोष लेत को भारी ॥
राज पाट मैं कछू न चाहों । सुखसम्मति कुलधर्म निबाहों ॥

तीन लोकका राज जो देई । हत्या बंधु तबहु नहिं होई ॥
जो तुम कहो उन अवगुन कीन्हा । छवहु प्रकार भारऊ लीन्हा ॥
तिन्ह प्रकारन मारा चाही । तौ यह मोहि दोष नहिं आही ॥
छौमें एक प्रकार जो होई । ताके मारे दोष न सोई ॥

धर्मदास उवाच

तब धर्मदास विनय अनुसारी । छौ प्रकार कवन कह भारी ॥
तेहि प्रकारन मारा चहिये । सो सब स्वामी मोसे कहिये ॥

कबीर उवाच

देखो हत्या को अब बरना । बहु संग्राम किये का सेना ॥
प्रथमे अग्नि देई घर कोई । मारत तासु दोष नहिं होई ॥
दूजे औरको जहर खवावै । हने ताहि कछु दोष न पावै ॥
तिसरे छत्र जो लेई छुड़ाई । राज काजमें पाप न भाई ॥
चौथे नारि पराई लेही । मारे ताहि पाप नहिं तेही ॥
पंचये धन चोरावन आवै । तेहि मारे कछु दोष न आवै ॥
छठये शस्त्र लै मारन धावै । मारै ताहि विलम्ब न लावै ॥
यह अपराध मारिये जोई । मारत हत्या कबहु न होई ॥

अर्जुन उवाच

छ अपराध हमहिंकू लागे । तऊ न हतों कर्म सब त्यागे ॥
मोसों यह अपराध न होई । जो मोकहँ इहि मारि विगोई ॥
अर्जुन धनुष बान गहि डारा । सबका अपनो बंधु विचारा ॥
सब कह कुल परिवार निहारा । उपजो मोह अस्त्र गहि डारा ॥
सुनहु सन्त अर्जुनको विखादा । इह लगि कीन्हो वाद विवादा ॥
अर्जुन मोह सम्पूरण भयऊ । कृष्ण अपन मनमत जो ठयऊ ॥
कीजे छल यक मता विचारा । अर्जुन बुद्धि हतौ यहि वारा ॥
ब्रह्मज्ञानते यदि समुझावउ । काल रूप अपनो देखलावउ ॥
तब यह माने कहा हमारा । मारौ फोरि सकल परिवारा ॥

कबीर उवाच

धर्मदास यह काल सुभावा । जाके जपन सृष्टि मन लावा ॥
सुर नर मुनि सब छलि२ मारा । कोई न छूटो यह संसारा ॥
ताते सतगुरु शब्द पुकारा । चीन्हो तत्त्व भेद टकसारा ॥
मूरख सत्य शब्द नहिं जाने । झूठहि झूठ सदा सुख मानै ॥
परपंची यह जग को रचना । बिन सतगुरु कोई नाहीं बचना ॥
छन्द—यहि भांतिकै हरि युद्ध ठानो भाव कोई ना लहै ।
सकल बंधु विरोध करिकै तासु को मारन चहै ॥
ज्ञान औ अज्ञान करि भरमाइ डारो चित्तको ।
तबहु मूरख नहीं बूझै देख फंदि उस बरतको ॥
सोरठा—सुन धर्मदास सुजान, शब्द एक संसार है ॥
हंस होइ निरवान, मन बच कै निश्चय गहै ॥

इति श्रीउग्रगीताअज्ञानयोगमतकबीरधर्मदाससंवादे
अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

कृष्ण जो मन में मता विचारा । अर्जुन सो पुनि बचन उचारा ॥
तुम काहे मोहैं गहि लीन्हा । केहि कारण तुम होहु अधीना ॥
क्षत्री धर्म लाज बडि होई । तुम कह दोष न लैहै कोई ॥
जो तुम जानु सदा ये जीहैं । येई तौ जन्म फेरि फेरि लेहैं ॥
अमर तुमहु मैं नाहीं कोई । फिरि २ आवागवन समाई ॥
मैं हूँ अमर नहीं हौं भाई । हम तुम यहिविधि फिरि२ आई ॥
जब २ पाप प्रगट मोहि होई । धरि अवतार करौं क्षय सोई ॥
जब २ द्वापर आवे भाई । हमतुम यहि विधि फिरि२आई ॥
कौरव पाण्डव फिरि२लडि हैं । आपहि आपु मारि कै मरि हैं ॥

तुम्हरो कीन्ह कछू नहिं होई । देखौ ब्रह्म ज्ञान करि सोई ॥
मनमें अहं कबहु नहिं कीजै । को मारे कहु को कह छीजै ॥
आपु जो करता काल कहावै । सोई यह संचार करावै ॥
मनमहँ मोह कबहुँ नहिं कीजै । इच्छा प्रभुकी गहि कर लीजै ॥
शस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई । कारण करण करै प्रभु आई ॥
तुम शिर कछू न लागे भारा । अपु ते आप जाय सब मारा ॥
जो तुम कहो जीव सब मरिहैं । जीव अमर फिरि२अवतरिहैं ॥
मारे मरै न जारे जरई । ताको मोह कहा ते करई ॥
जो काया सो मन चितलाया । मृतक सदा बनी यह काया ॥
मृतक रूप सदा रहै काया । तेहिकारणतुम करत हौ माया॥
तुम हो अहो युद्ध अति आगर । यहि जगमें तुमही हो उजागर॥
जो तुम युद्ध करो नहिं भाई । जगमें होइ है तुम्हरि हँसाई ॥
कहि है सबै युद्ध सो डरई । क्षत्रि धर्म तेरो नहिं रहई ॥
अपने कुलको धर्म जो हारै । नर्कवासको सो पशु धारै ॥
जो कुल धर्म सदा प्रतिपालै । स्वर्गवास मे सो सुख चालै ॥
अपनो धर्म न छाडिय भाई । काहेको तुम करहु हँसाई ॥
लोग पंच जो निंदा करई । धिग जीवन तोको अनुसरई ॥
तब तो भली बात नहिं होई । महा दोष पुनि लागे सोई ॥
पाप होय मनमें पछिताई । नर्कवास तव रहै समाई ॥
कर्म योग तोहि वाक्य सुनावौं । स्वर्गवास ताते पहुँचावौं ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य औ शूद्रा । प्रभु कह छांडि भरै सब वोद्रा ॥
नरनारायण देह सवाँरा । तबहु न चीन्है मूढ गवाँरा ॥
ब्राह्मण कर्म सुनो चितलाई । प्रातः स्नान जपै प्रभु राई ॥
नेम धर्म शुचि संयम करई । सन्ध्या गायत्री चित धरई ॥
ठाकुर सेवा मन चितलावै । कथा कीर्तन करै करावै ॥
मनमें सेवा फल नहिं मांगे । स्वर्गवास पहुँचे सब आगे ॥

क्षत्री धर्म कर्म बहु करई। स्नान करै प्रभुको चित्त धरई ॥
यज्ञदान निज धर्म निवाहै। सूरातन नहिं दलहि सकाहै ॥
वैश्यवर्ण व्यापार व्योहारा। नेम धर्म जप तप व्रत धारा ॥
शूद्र वर्ण सेवकाई करई। मन वच कर्म इहै चित धरई ॥
सेवा फल है अगम अपारा। आवागमन ते होइ नियारा ॥
एते कुलके धर्म जो कहिये। सदा सर्वदा जो निर्वहिये ॥
यह मारग जो लागा रहई। स्वर्ग वासमें सो सुख लहई ॥
मारग छांड़ि कुमारग लागे। काम क्रोधमें तन मन पागे ॥
नर्कवास तेहि कारण पावे। जन्म २ वह योनी आवे ॥
निंदा सकल ताहिकी करई। वाउर वेद ताहि परिहरई ॥
ताते अर्जुन ज्ञान विचारो। ब्रह्म ज्ञान मनमें संभारो ॥
मोह लाजके बंदन छांड़ो। लैकै अस्त्र कुटुम सब वाड़ो ॥
तुम कह पाप पुण्य नहिं होई। कारण करण करावे सोई ॥
साधु संत जो परम सनेही। पाप पुण्यते लिप्त न देही ॥

अर्जुन उवाच

कहैं अर्जुन सुनु पुरुष पुराणा। तिन साधुन कर करो बखाना॥
कैसी रहनि रहैं वे बोलैं। कैसे बैठें कैसे डोलैं ॥
बोले कृष्ण तब चतुर सुजाना। यहि विधि रहै साधु निर्वाना॥
स्थिर मन बुद्धि निहकामी होई। पांच पचीसौं रहैं समोई ॥
बोले सत्य असत्य न भाखे। अभ्यन्तर गति प्रभु कह राखे॥
सो तो कह दुख सुख नाहिं माने। दृष्टि माइ प्रभु पूरण जाने ॥
तत्व प्रकृति चापि करि बैठे। जैसे कछुआ पाउ समेटे ॥
सीतल सत्य सहज पशु धारे। बाहर भीतर ब्रह्म निहारे ॥
यह लक्षण संगति के भाई। इंद्री जीते साधु कहाई ॥
पूरण पक्ष जो अर्जुन करेऊ। रोगी मूर्ख भाव जो धरेऊ ॥

निद्द इच्छा रोगी है भाई । मूरख इच्छा नाहीं पाई ॥
ताकर मैं विरतान्त सुनाऊं । सकल कामना तोरि मिटाऊँ ॥
मूरख मुग्ध कछू नहिं जानै । काम क्रोध मन कछू न आनै ॥
पुरइन सम वासा है वाको । लिप्त अंग कछु होइ न ताको ॥
निशिवासर फिरिनाम भुलाई । तेहि कारण भर्में सब ठाई ॥
रोगी इंद्री जीत कहावै । काम क्रोध नहिं क्षुधा सतावै ॥
पै इच्छा जो अब उठि लैहै । काम क्रोधमें बहु चित देहै ॥
नाम विहीन दुखी बहु तलफै । खान पान आगे बहु कलपै ॥
ताते पटतर भक्त न भाई । बाधा यम पाटनको जाई ॥
साधु संत की रहनि बतावों । करनी साखि जो वाक्य सुनावों॥
ऐसो रहनि साधु जो होई । जाकी महिमा बरनि न जाई ॥
ताते अर्जुन ज्ञान बिचारो । मनते लोभ मोह गहि डारो ॥
दुतिय अध्याय इहां लगु कहेऊ । आगे भेद और कछु लहेऊ ॥

कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा । यतना कृष्णकीन्ह केहि आसा॥
छल छिद्रहि कै ज्ञान सुनावै । अर्जुन कह तम गुण उपजावै ॥
जाते धनुष बान संधारै । सब परिवार चुनीचुनि मारै ॥
करता आप जो युद्ध करावै । शिर पाण्डों के भार चढावै ॥
छन्द–काल कर्ता करम करई समुझि देखि विचारिकै ॥
सत शब्द एक सार निर्मल ताहि लेह संभारिकै ।
तीनि गुण सब गारिकै जब जाइकै चौथे मिलै ॥
शब्द सुरति लै लोक पहुँचे तबहि हंसा उठि चलै ।
सोरठा–ऐसी रहनी हंस, धर्मदास सो अमर है ।
रहै न कबहूं संश, जो नामी नामै गहै ॥

इति श्रीमद् उग्रगीतायांब्रह्मज्ञानयोगमतेकबीरधर्मदाससंवादे
अर्जुनकृष्णअशोकयोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

अर्जुन पूछे सुनु भगवाना । निर्मल ज्ञान सुनावो काना ॥
तुम तो कहो कि युद्ध मचावौ । सब पलको तुम मारि गिरावौ॥
ज्ञान कही कहि मोहि समझावौ । फिरि कुलधर्म मोहि बतलावौ॥
जेहि ते मोर अकाज न होई । मोहि ज्ञान प्रभु दीजै सोई ॥

श्रीभगवानुवाच

कहैं कृष्ण सुनु अर्जुन बीरा । तुम तौ क्षत्रिय हौ रणधीरा ॥
मारग दोइ ज्ञान हैं भाई । ताते तेहि कहौं समुझाई ॥
निवृत्ति मारग आहि निरासा । सदा ब्रह्ममें रहैं निवासा ॥
तत्त्व प्रकृति लिप्त नहीं होई । सदा रहे निर्लेपी सोई ॥
नाम विना कछु बात न बोले । मन वच क्रम अंतरपट खोले ॥
निष्कर्मी निर्मल निर्मोही । नहिं इच्छा मननाम समोई ॥
जगमें रहे कमल सम भाऊ । ऐसे लिप्त होइ नहिं काऊ ॥
दान पुण्य जो यह कछु करई । ताकर फल मनमें नहिं धरई ॥
दाता भुक्ता प्रभु कह जानै । कर्म धर्म कछु मनहिं न आनै ॥
मारग निवृत्ति साखि जो अहई । महाकठिन मारग तेहि कहई ॥
कठिन विहंगम मारग होई । पहुँचै कोटिन्ह महँ पुनि कोई ॥
तेहि मारग कोइ चलने न पावै । काम क्रोध मद लोभ भुलावै ॥
पूरण सिद्ध हुवा नहिं जाई । ताते तोहि प्रवृत्ति दृढ़ाई ॥
कुलके कर्म सदा चित धारै । कबहु न छाड़ै लोकाचारै ॥
दान पुण्य जप तप व्रत करई । संध्या तर्पण मन चित धरई ॥
नियम धर्म औ करै जो स्नाना । सदा सुमिरन धारै ध्याना ॥
उद्यम अपने कुलको करई । यह मारग जौ लागा रहई ॥
सो तो कर्मके कश्मल धोवै । धीरा तन मन मैल जो खोवै ॥

यह पिपील मत कहिये भाई । हरे हरे वह मारग जाई ॥
तेहि मारग कोइ विघ्न न लागै । कर्महि कर्म धर्म तब जागै ॥
स्वर्गवास पावै सो प्राणी । कबहीं ताको होय न हानी ॥
तासौं मैं बहु प्रीति जनावौं । संशय दुख सब दूरि बहावौं ॥
धनसम्पति सुख बहु विधि देऊँ । आपन करि मैं ता कह लेऊँ ॥
ताते प्रवृति अधिक फल भाई । लोकाचार समीप बताई ॥
तुम क्षत्री रणपति हो आगर । गहो धनुष तुम जक्त उजागर ॥
ऐसो कहो जब कृष्ण सुजाना । अर्जुन पुनि पूछो भगवाना ॥
कैसे कर्म लिप्त नहिं होई । कर्म धर्म तुम थापेउ सोई ॥
कहै कृष्ण अर्जुन सुन लीजै । सेवा सुमिरण मैं चित दीजै ॥
करि करि कर्म मोहि सब अर्पै । कबहुँ न पाप दोष सो डर्पै ॥
ताके शिर नहिं लागै भारा । सत्य भाव मो ऐसे विचारा ॥
पांच हत्या नित गेही करई । अंध भावते गेही फिरई ॥
नित नित हत्या शिर पर लेही । बांचे जन कोइ परम सनेही ॥
कहै अर्जुन यह हत्या कैसी । गेहीको तिन लागै सौसी ॥
सो तो वर्निके मोहि सुनावौ । दुविधा भावसो मोहि मिटावौ ॥
कहै कृष्ण अर्जुन सुनु वैना । हत्या पंच निरखि कै लेना ॥
प्रथम हत्या जो पीसेपिसाना । दूसर कुटै आनि जो धाना ॥
तिसरै बढ़नी जो घर देई । चौथे कलशा भरै जो कोई ॥
पंचये रसोई चूल्हा वारै । हत्या पांच जीवहूँ मारै ॥
कहै अर्जुन यहि विनु को रहई । यह पातक कैसे परिहरई ॥
यह पातक जो देह सनेही । कैसे उधरनी इनसो लेही ॥
सुनु अर्जुन जिव कर्म न लागैं । नित नित करि प्रभु चरणन पागैं॥
जो कछु करै सो प्रभुके कारण । ताहक दोष न कछू विचारण ॥
करै रसोई प्रभुके नामा । पुनि अर्पै जल लै सब सामा ॥

अंत कार काढ़े परसादा। दीन दुखित जो पोषै सादा॥
ता पाछे प्रसाद जो पावै। ताको हत्या निकट न आवै॥
ऐसे कारज प्रभु सनमानै। ताहि दोष नहिं वेद बखानै॥
त्रै अध्याय तोहि सन कहेऊं। कर्म योग परकट कै सहेऊं॥
कहै कबीर सुनु धर्ममुनि आगर। सत्य सुकृतको ज्ञान उजागर॥
यह तो कर्म ज्ञान दृढ़ावै। फल भोगै फिरि योनिहि आवै॥
निवृति कहै त्रिवृति ले आवै। फिरि फिरि लैके कर्म दृढ़ावै॥
ताते मैं संसारहि आवा। सत्य शब्द कहि बहु गोहरावा॥
बूझेगा कोइ सन्त विवेकी। ज्ञान दृष्टिते सब कछु छेकी॥
हम तो तीनि लोकते न्यारा। जो बूझै सो हंस हमारा॥
यह रीझै तो स्वर्ग देइ वासा। कर्म भोगि मृतुलोक निवासा॥

छन्द–धर्मदास मैं कहौं तोसौं सार शब्द जो भेद है।
हंस मन बच गहैं ताकु पालक ना विछुरार है॥
विश्वास देखो प्रीति करि मैं निकट प्रकटो तासुको।
यम फंद शंसा भटी चौथो लोक देऊ निवासको॥

सोरठा–अगम भेद है सार, भेद कोइ नहिं पावई।
उतरे भव जल पार, शब्द गहै विश्वास कै॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
कर्मयोगाख्यानो नाम तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्री कृष्ण उवाच

अर्जुन सो अस कहेउ भगवाना। अगम भेद बतावै ज्ञाना॥
यह गीता काहु नहिं पाई। सो मैं तोसों वाक्य सुनाई॥
प्रथम मैं गीता सूर्य सुनावा। उन वैवस्वत पुत्र पढ़ावा॥

ताकर सुत देवसि जो भयऊ । अपना सुतहि पढ़ाया लयऊ ॥
उन्ह लै सुत इक्ष्वाकुहि दीन्हा । प्रगट फिर काहु नहिं कीन्हा ॥
यतिक दिवस जो रहेउ समाई । अब तुम कहँ मैं आनि सुनाई ॥
और ज्ञान यहि सम नहिं होई । सुरति लौरति लै देखहु सोई ॥
तब अर्जुन पूछेउ अस बाता । तुम तौ भये यहि युग उतपाता॥
सूर्य को आदि युग गयऊ । तुम सो गयउ उन्ह ज्ञान पयऊ॥

श्रीभगवानुवाच

कहै कृष्ण सुनु वचन प्रमाना । जो मैं तोहि सुनावों ज्ञाना ॥
मैं तो सदा रहों जगमाहीं । तुमहू रहो हमारे पाहीं ॥
जन्म अनेक तेरो चलि गयऊ । जन्म अनेक मेरो पुनि भयऊ॥
तैं अचेत माया में बंधा । मैं निर्मल जस पूरण चन्दा ॥
जन्म जन्म के गुण मैं जानौं । अपनो तेरो गुण पहिचानौं ॥
आदि अंत सकलौं मैं जानौं । ताते यतना भेद बखानौं ॥
तैं है काम क्रोध अधिकारा । नहिं बूझै तै चरित हमारा ॥

अर्जुन उवाच

पुनि अर्जुन अस पूछन लयऊ । कारण कवन जन्म तुम धरेऊ ॥
निह इच्छा तुम अंतर्यामी । काहे आवागमन समानी ॥
तुम्हारे दुष्ट मित्र नहिं कोई । कारण कवन जन्म धर लेई ॥

श्रीभगवानुवाच

कहै कृष्ण सुनु परम पियारे । धरणी माँह पाप होइ भारे ॥
बहुत अधर्म होन जब लागे । वसुधा भार मही उठि लागे ॥
जब जब देखौं महि पर भारा । तब तब आनि लेउं अवतारा॥
जन्म कर्म लै खेलौं जगमें । करि संहार जो रहौं अलग में ॥
मेरी गति मति कोइ न जाने । महिमा चारो वेद बखाने ॥
होइ निष्कपट जो मोहक ध्यावै । महा अनंद परम निधि पावै ॥

जो मोसों कोइ अंतर राखै । कै २ दंभ भक्ति मन भाखै ॥
ता कहँ काल बहुत दुख देई । दंभी भार बहुत शिर लेई ॥
मैं हुँ तासों अंतर राखौं । कबही तासों निकट न भाखौं ॥
ताते तुम मोहक पहिचानो । मेरो कहा सदा तुम मानो ॥
तब अर्जुन बोले अस बानी । मर्म तुम्हार न काहु जानी ॥
करन करावन तुमही स्वामी । केहि कारण पृथ्वी अकुलानी ॥
तुम काहेको मारण आवो । केहि कारण तुम भार चढ़ावो ॥
तब अस बोले कृष्ण सुजाना । मर्म आपनो कहौं बखाना ॥
तीनि लोक जो राज हमारा । ताते रचौं खेल विस्तारा ॥
बहुत भांतिके ख्याल बनावौं । खेलि ख्याल पुनि ताहि मिटावौं ॥
तीनि लोक में आवौं जावौं । निर्गुण सगुण जु नाम धरावौं ॥
जो जन भक्ति हमारी करई । मन वच कर्म मोहि चित धरई ॥
तेहि कह मह्यु सहायक होऊँ । उन्हके दुष्टहि मारि बिगोऊँ ॥
सदा रहौं भक्तन हितकारी । तारण तरण है नाम मुरारी ॥
अर्जुन बहुरि जो पूछन लागे । इंद्री जीति सबै गुण त्यागे ॥
करन करावन कहवो स्वामी । तुम पूरण हो अंतर्यामी ॥
काहे सेवा पूजा लावे । देवि देवता बहुत मनावे ॥
देव पितरको पिण्ड जो भरई । केहि कारण बंधनमें परई ॥
तीरथ व्रत बहुते तुम धावे । केहि कारण तुम नाम धरावे ॥
सुनु अर्जुन मैं कहौं बखानी । मेरी मति गति विरले जानी ॥
जग रचना स्थिर नहिं पावे । ब्रह्म अज्ञान विराग उठावे ॥
कोइ काहूकी शंक न माने । आपु आपुमें ब्रह्म बखाने ॥
सब व्यवहार जगतके चाहौं । राज काजमें बोर निवाहौं ॥
तब यह कर्म दृढावो आई । तीन सृष्टि तुम कस उरझाई ॥

चारि चरण तब परकट कीन्हा । कर्म धर्मपुनि ता कह दीन्हा ॥
ताते पूजा हम ही थापो । देवन महँ हम ही आपो ॥
पूजत मोहि देखैं संसारा । बहुते भाँति तब पूजा धारा ॥
तीर्थ व्रत जप तप गहि लीन्हा । ताकर फल संसारहि दीन्हा ॥
फल कारण सब जग अरुझाना । देवी देव रहे लपटाना ॥
जैसा करे तैसा फल पावे । दान पुण्य बहुते मन लावे ॥
ब्रह्म ज्ञान विनु मोहि न जाने । ताते चौरासी अरुझाने ॥
आवे जाई जगत मझारा । पशुवा शूकर श्वान सियारा ॥
चौरासी योनीमें फिरई । बडे भाग नर देही धरई ॥
जो कोइ भक्त मोहि न चितलावे । मोक्ष मुक्ति परम पद पावे ॥
मन संकल्प विकल्प ते त्यागे । तब यह पूरण तंतुहि लागे ॥
यज्ञ कर्म सब विधि व्यवहारा । ताते भव जल उतरे पारा ॥
द्वादश यज्ञ कर्म है भाई । जेहिते महा परम सुख पाई ॥
सो अब तुमसों कहौं बखानी । यज्ञ कर्म करै जो प्राणी ॥
प्रथमैं ब्रह्म यज्ञ है भाई । ब्रह्म सउज लै ब्रह्म अपराई ॥
ब्रह्मे अग्नि होम ब्रह्म देई । सब विधि ब्रह्म जानिके लेई ॥
दुतिया यज्ञ देव यज्ञ करावै । देवि देवता बहुत मनावै ॥
सब साउज लै होम करावे । यहि विधि जन्म सफल सो पावै॥
तीसर यज्ञ संयम करु इंद्री । साधे भूख प्यास औ निंद्री ॥
पांच पचीश गुप्त लिये खेलै । मनुवा निशि दिन प्रभु सो मेलै॥
चौथ यज्ञ संयम औ आतम । अभ्यंतर चीन्है परमातम ॥
आतम परमातम जब जाने । यहि विधि भेटैं श्री भगवाने ॥
पैंचयें द्रव्य यज्ञ जो होई । करि महि रक्षा साधु रसोई ॥
बहुत भाँतिके साधु जेवावे । तेहि पीछे वह भोजन पावे ॥
जस कीरत होवे संसारा । ताकी गति वैकुंठ सवारा ॥

छठये यज्ञ तपस्या भाई । आगिल जन्म राज कर पाई ॥
सतयें यज्ञ योग जो साधै । आसन मुल पवन अपराधै ॥
पूरण योग होइ जो कोई । काल त्रास कह जानै सोई ॥
जब लगि चाहै काया राखै । फिरि जन्मै तो योग अभिलाषै ॥
अठयें योग यज्ञ अधिकाई । गीता कथा पाठ करै भाई ॥
पोथी पढ़ि गुरु मारग गहई । सो भवसागरते निर्वहई ॥
नवयें ज्ञान यज्ञ है भाई । ज्ञान ध्यानमें रहै समाई ॥
दशयें यज्ञ जो प्राण पयाना । यह नारम जो रहै लपटाना ॥
एकादश है संयम सारा । सूक्ष्म भोजन करै जेवनारा ॥
देहीको मिथ्या करि जानै । प्रभु पूरण अन्तर पहिचानै ॥
द्वादश यज्ञ विधि नाम कमावै । योग युक्ति सब जानि जो पावै ॥
यहि विधि द्वादश यज्ञ हैं भाई । जो कोइ करै परम हित लाई ॥
सो भावसागरते तरि जाई । विष्णुलोकमें जाइ समाई ॥
अर्जुन तुम तौ भक्त हमारे । बहुत उजागर प्रेम पियारे ॥
माया मोह चितते तुम डारो । धनुष बाण तुम वेगि सम्हारो ॥
चतुर्थाध्याय कहेउ तुम संगा । यज्ञ योग नाम सब अंगा ॥

कबीर उवाच

धर्मदास तुम संत सुजाना । सत्य शब्दका मर्म जो जाना ॥
यह तो धर्म कर्म व्यवहारा । कहा करै जिन शब्द संभारा ॥
शब्द हमार भेद टकसारा । जो बूझै सो उतरै पारा ॥
मुक्ति होइ सत्यलोक सिधावै । तीनि लोक बंधन मुक्तावै ॥
तीनि लोक जग आवागवना । अधर लोक है सतगुरु भवना ॥
इच्छा रूप फिरै जन मुक्ता । जहां पुरुष समीप संयुक्ता ॥
तहँ कर वर्णन कहा बखानों । गूँगेको सपना सम जानों ॥

छन्द–लोक उपमा कहा दीजे जगतमें कछु नाहिं हो ।
पुरुष पटतर कहा दीजे समुझियो मन माहिं हो ॥
नदी अठारह गण्डका रेणुका भरिपूर हो ।
पुरुष शोभा अग्र आभा एति सूरय झूर हो ॥

सोरठा–पुरुष रूप अपार, कहते शोभा ना बनै ।
चीन्हो शब्द हमार, जेहिते पुरुष परसि हो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
द्वादशमब्रह्मव्याख्यानो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन तुम हो भक्त हमारा । तुम्हरो काज करौं मैं सारा ॥
ज्ञान ध्यानमें मन तन देहू । निशिवासर सुमिरनके लेहू ॥
ज्ञानवन्त जो है तत्त्वज्ञानी । तिनकी महिमा अवर न जानी ॥
हर्ष शोक जाके नहिं होई । काम क्रोध सो लिप्त न सोई ॥
कर्म करे करता न कहावे । अभ्यन्तर मारग चितलावे ॥
इंद्री आपु आपु सुख चाहे । ताके कबहूँ निकट न बाहे ॥
इंद्री कर्म सदा होय भाई । ताके लिप्त न होवे भाई ॥
तिनसों कर्म करै जो कोई । परमातम कह लाग न सोई ॥
सम दृष्टी होय सर्व निहारै । सर्व योनिमें ब्रह्म विचारै ॥
ऐसो जो कोइ प्राणी होई । जीवन मुक्त कहावे सोई ॥
काम क्रोधमें यह जग बंदा । ज्ञान न उपजे मूरख अंधा ॥
निशिदिन ताहि मोह भरमावे । बहुरि बहुरि पाछे पछितावे ॥
नारी सुत हित बन्दन लाया । धनसो मन जो बहुत लगाया ॥
अंतकाल कोइ काम न आवे । होइ बिछोह पाछे पछितावे ॥
अन्तकाल जब संकट आवै । कालके हाथ सो कौन बचावै ॥

रोवै बहुत भांति तेहि कारण । मुये न जीवै बहुत पुकारण ॥
प्रभु हिरदय नहिं मूरख जाने । मृतक आशा लागि भुलाने ॥
मृतक रोवैं भला न मानै । फिर यमराजा संकट ठानै ॥
लोगन घरते बाहर कीन्हा । की जारै की माटी दीन्हा ॥
मृतक रूप बनी यह देही । करि ले प्रीतम प्रेम सनेही ॥
जगके बन्धन जगमें छूटै । बहुत त्रास तेहि यम धरि लूटै॥
इन मों कहा मोह चितलाया । प्रभु इच्छा नहिं मूरख पाया ॥
काकर पिता पुत्रको होई । नारी सुत हित लागै सोई ॥
ता कारण यह दुख सुख मानै । अज्ञानी नहिं प्रभुको जानै ॥
कबहु न सुमिरण प्रभुका करई । निशिदिन ज्ञान ध्यान परिहरई॥
ताते बहुत भांति दुख पावै । प्रभुकी शरण न कैसेहु आवै ॥
यह तो लक्षण जग व्यवहारा । ताते बूड़े मूढ गवाँरा ॥
अर्जुन कर्म योग है नीका । संशय मेटो सकलौ जीका ॥
कर्म करै शिर अपने लेई । कारण करतामें चित देई ॥
आपन कर्म धर्म नहिं छोडै । दुख सुख प्रभु इच्छा शिर बोडै॥
सदा अनन्द रहै सुख बासा । अन्तकाल वैकुंठ निवासा ॥
क्षत्रिय धर्म तोहार जो होई । करौ संहार शत्रु पुनि सोई ॥
तुम्हारे लरे सबै कोइ लगि हैं । ना तो निंदा तुम्हरी करि हैं ॥
धर्म छांड़ि जनि पातक लेहू । युद्ध करनको मन चित देहू ॥
कर्म संन्यास पञ्च अध्यायी । अर्जुन सुनि मन दुबिधा आयी॥
युद्ध करों की ज्ञान विचारों । केहि विधि अपनो जीव उबारों॥

कबीर उवाच

धर्मदास यह काल तमासा । तासो चाहै मुक्ति निवासा ॥
ज्ञानी अज्ञानी भरमावै । धर्म अधर्म दोऊ ठहरावै ॥
धर्म अधर्म काल की पाशा । ताते न्यारा शब्द प्रकाशा ॥
कर्म अकर्म मध्य है सोई । तुम जाने जानै सब कोई ॥

सद्गुरु संधि लखै को पारा । निराधार है अधर अधारा ॥

छन्द–गमि अगमि सद्गुरु लखायो निअक्षर सो पास है ।
कली फूलैं बास धावै ऐसो शब्द निवास है ॥
फूल तिल जब संग कीन्हों सुबस बासा तब भई ।
हंस बासा शब्द लीन्हो शब्द रूपी सो सही ॥

सोरठा–शब्द मता है सार, सुर नर मुनि जानैं नहीं ।
अंधा अध अचेत, अँधेरे न सुरति आनै नहीं ॥

इति श्रीमद्भगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
कर्मसंन्यासव्याख्यानो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

छठे अध्याय ध्याय है योगा । सुनु अर्जुन मैं कहौं संयोगा ॥
जब लगि ध्यान योग नहिं करई । तब लगि निर्मल चित नहिं करई ॥
ध्यान योग योग निजु साधै । मन वच कर्म नाम अवराधै ॥
मन संकल्प विकल्प न जाके । दीन वचन कठोर न ताके ॥
निस्तरंग कछु उठे न इच्छा । सबमें पारब्रह्म उत पेच्छा ॥
पांच पचीश न कबहूँ धावै । निशिबासर प्रभु संग रहावै ॥
पांचौ इंद्रिय लिप्त न होई । ऐसे साधु विरले कोई ॥
गृहस्त जीवन में बासा लेई । उत्तम ठौर कुटी कर देई ॥
मानुष तहां दृष्टि नहिं आवै । आसन उत्तम तहां बिछावै ॥
प्रथम धरणी पर धरे मृगछाला । तापर कुश साथरी रसाला ॥
तेहि पर बैठे दृढ करि आसन । कैसो भांति न होइ उदासन ॥
खंभा सम आसब दृढ आसन । सुरतिनिरति ले नाम संभारन ॥
जो यतने में आतम दरसइ । सो ज्ञानी प्रभु पूरण परसइ ॥
ऐसे जो कोइ ध्यान लगावै । बहुरि योनि संकट ना आवै ॥

साधै निद्रा हार व्यवहारा । बहुत न मूदे नैन उघारा ॥
संयम के सो साधन करई । सो साधू आपहि निस्तरई ॥
मन कह ज्ञान ध्यान में राखै । सुरति निरति सो अमृत चाखै॥
जो मन अन्त न धावा चाहै । घेरि घेरि अभ्यन्तर बाहै ॥
तब अर्जुन अस पूँछन लागे । यह मन चञ्चल पल पल भागे॥
यह तौ काहू जाइ न पकरा । कौन उपाय जाइ मन जकरा ॥
गगन बाइ जो गर्जत आवै । कैसे गगरी माहि समावै ॥
यहि विधि मन चञ्चल यह भाई । तौ कैसे यह पकरन पाई ॥

श्रीभगवानुवाच

कृष्ण अर्जुन सो कहेउ बुझाई । ऐसे चञ्चल अस्थिर भाई ॥
जो यह मनको साधन करई । अभ्यन्तर लै फिरि २ धरई ॥
चारों दिशा चलन नहिं पावै । जबै चलै तब माह समावै ॥
पारब्रह्म देखै तब नैना । दोई अनन्द परम सुख चैना ॥
दीन दुखित कह दाया करई । अपनासा दुख चितमें धरई ॥
दया भावसो हितकर बोलै । तृप्त करे साधुन कह सो लै ॥
परका दुःख नेवारै सोई । ऐसी भक्ति परम गति होई ॥

अर्जुन उवाच

अर्जुन कहै सुनु कृष्ण मुरारी । तारण तरण भक्त हितकारी ॥
ऐसा साधु कोइ ना देखा । आपनसा दुख सब कहपेखा ॥
आपन सुख चाहै सब कोई । औरन दुःख होय सो होई ॥

श्रीभगवानुवाच

अर्जुन जो हैं परम सनेही । आप निकरि नहिं जानहि देही॥
पर सुख कारण आपु निरासा । दुख सुख देखै सकल तमाशा॥
भक्ति करै जो मन चित लाई । ताते परम पदहि में जाई ॥
निर्गुण साधु जो पूरण ज्ञानी । ताकी महिमा वेद बखानी ॥
वेद पुराण ते अधिक है सोई । ताकी पटतर वेद न होई ॥

वेद भाव संसार पसारा । परमभक्ति है अगम अपारा ॥
तुम हू भक्ति करो मन लाई । छांड़ो माया मोहहि भाई ॥
छठो अध्याय इहां लघु कहिया। आतम संयम योग जो रहिया॥

कबीर उवाच

कहै कबीर यह आतम जानी । इतने अधिक बखानों ज्ञानी ॥
धर्मदास तुम ज्ञान उजागर । तुम तो बसि हो सुखके सागर॥
यह करनी जो कृष्ण बखानी । यह विधि धरैं आतम ज्ञानी ॥
मैं तो ज्ञान अगम तोहि दीन्हा । काल कर्मको पापउ चीन्हा ॥
ताते हंसा दृढ़ करि लेऊ । अगम अगोचर दीन्हेउ भेऊ ॥
यह मन चञ्चल थिर नहिं होई । कैसिहु विधि जो चाहै कोई ॥
ताकी विधि मैं प्रगट सुनाऊँ । मनुवां इस्थिर करि दिखलाऊँ॥
यह मन पानी रूप सरूपा । बुद्धि धाम पृथ्वी कर रूपा ॥
चित जो वाइ सरूपी होई । अहं अज्ञानी रहै समोई ॥
पानी मही बराबरि भाई । चित्त पवन लै आहु उठाई ॥
ज्यों २ पवन चलै झक झोलै । त्यों२ मनुवाँ चहुँ दिशि डोलै ॥
ताते यह उपचार सुनाऊँ । मनुवाँ कह अंतर ठहराऊँ ॥
मनु पावना लै त्रिकुटी लेखे । अक्षर सुरति अमीरस चाखे ॥
जौ लौं पवन रहित नहिं होई । तबलगिमनअस्थिर नहिं सोई॥
गगने पवन रहै पुनि भाई । त्रिकुटी गागरि लेह समाई ॥
पानी पवन संघ जब होई । ब्रह्म अग्नि उपजावै सोई ॥
मन औ पवन होइ जब मेला । परम पुरुष ते होइहि मेला ॥
ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई । तब यह मनुवां सहज समाई ॥

छन्द–चलत मनुवाँ अचल कीन्हो पवन अस्थिर जब भई ।
मन पवन जब मेला भया अमृत धारा बर्षई ॥

जिन्हे सतगुरु शब्द मिलिया अमी सो हंसा पिया ।
अजर अमर शरीर पायो बास सुख सागर लिया ॥

सोरठा—संत करो विवेक, शब्द सार गहु बूझिके ।
सुरति निरति सो देख, सतगुरु शब्द अपार जो ॥

इति श्रीमदुग्रगीतायामब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्ण कहैं अर्जुन सुनि लीजे । भक्ति हमारी मन चित दीजे ॥
सतये अध्याय जो तुमसों कहऊं । भक्तनमें हितकारी रहऊं ॥
मैं ही करौं करावौं भाई । तीनि लोक जहँ लगि निर्माई ॥
मैं संघारौं मैं प्रतिपारौं । चौदह भुवन पलकमें टारौं ॥
जहँ लगि पशु पक्षी जिव होई । मैं सबही में रहौं समोई ॥
दानपुण्य आदिक सब माहीं । बनिज व्यापार करै सब पाहीं ॥
देवी देव सकलौं मैं सब ही । भवसागर सकलौं जग हम ही ॥
तीनि लोकमें विजय मैं सारौं । जब चाहौं तब बेर सघारौं ॥
करौं सघार सृष्टि पुनि सोई । रहौं अलेप निरंजन होई ॥
सगुणते निर्गुण मैं होइ जाऊं । फिर चाहौं सगुण होइ जाऊं ॥
सगुण औ निर्गुण रूप हमारा । जहिते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
अर्जुन सबमें मोही जानो । कहा हमारा निजके मानो ॥
चारि प्रकार भक्ति जो होई । तामें ज्ञानी अधिक सो होई ॥
रोग दुःखमें भक्ति जो करई । दुख कारण जो मोहि सुमिरई ॥
दीन दुखी निशिदिन लव लावे । कब प्रभु मोकहँ भोग भोगावे ॥
द्रव्य चहै जो द्रव्यहि स्वारथ । ज्ञानी चाहै मुक्ति पदारथ ॥

ज्ञानी सदा मोहि पहिचानै । मेरी भक्ति सदा सुख मानै ॥
ज्ञानी अधिक ताहिते होई । भक्ति हि हेतु अधिक है सोई ॥
अज्ञानी मोहि नर ही जानै ।अलख रूप मोहि नहिं पहिचानै॥
पूरण ज्ञान होइ जब भाई । तब ही निर्गुण अलख लखाई ॥
देवी देवा सब नर पूजै । तिनहींको करता करि बूझै ॥
उनकी प्रीति देव होइ जाऊं । उनकी मनकामना पुराऊं ॥
कोइ न बूझै ख्याल हमारा । रहउँ सृष्टि पुनि करों संघारा ॥
ज्ञान विज्ञान योग जो होई । सतवांध्याय सुनायो सोई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर जगकरता आही । धर्मदास तुम चीन्हौ ताही ॥
पुरुष तीनि लोक यह दीन्हा । तीनिहुँ लोक राज इन कीन्हा॥
सब जग माँहि कर यह राजू । मन इच्छा कर सबका काजू ॥
इनते मुक्ति कहौ कस होई । देखहु आतमज्ञान कैसोई ॥
इनते मुक्ति होइ जो साजा । देह धरावै कवने काजा ॥
धर्म अधर्म जीव अरुझाया । आवागमन महा दुख पाया ॥
आवागमन न छूटै भाई । तीनिलोक राखै लपटाई ॥
धरि अवतार जबैं जग आवै । सकल सभा ऐसी हि भरमावै॥
सृष्टि जहां लगि है संसारा । ऐसी भांति सब अवतारा ॥
काहू मुक्ति होइ नहिं भाई । राम कृष्णते को बड आही ॥
उनहू आवागमन न छूटै । धर्मराज फिरि २ जग लूटै ॥
धर्मराज यह खेल पसारा । औघट घाट मूँदि सब द्वारा ॥
तीनि लोक ते जाने न पावै । स्वर्ग मृत्यु पाताल रहावै ॥
धर्म कर्म ते स्वर्ग हि जाई । धर्म घटे मृत्यु मंडल आई ॥
जैसे घरिया रहट सुभाऊ । ऊँचे नीचे फिरि २ आऊ ॥
बन्धनते छूटै नहिं पावै । ऐसे जीव सदा भरमावै ॥

सद्गुरु चौथे लोक निवासा । मिलै अँकूरी जो निजदासा ॥
सार शब्द है तेहि पहुँचाऊँ । तीनि लोक बन्धन मुक्ताऊँ ॥
पावैं सार शब्द निज बीरा । पहुँचे लोक जब छुटे शरीरा ॥
यमराजा तेहि निकट न आवै । चौरासी ते जीव छोडावै ॥
सार शब्द गहै निज डोरी । उतरे हंसा घाट करोरी ॥

छन्द–धर्म सेवा बहुत कीन्हो पुरुष दीन्हो राज हो ।
लोक तीनौं राज पायो गर्वते अति गाज हो ॥
घाट अवघट सबै मूँदो कतहुँ नाहिं निकास हो ।
पुरुषते दुइ ठानिकै सब जीव राखो पास हो ॥

सोरठा–ऐसी युक्ति बनाइ, पाप पुण्य फंदा रच्यो ।
चले लोक सो जाइ, सद्गुरु शब्द प्रताप जेहि ॥

इति श्रीमदुग्रगीताज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

अर्जुन कहै सुनौ प्रभु मेरे । मैं तो अधीन सदा हौं तेरे ॥
कहौ बखानि ब्रह्मको आही । सो निज भेद कहौ मोहि पाही ॥
अध्यातम तुम कहौ बुझाई । कर्म नाम काहेको रहाई ॥
अद्भुत रूप बखानौ सोई । कछु मोसों जनि राखौ गोई ॥
अर्धनाम कहावे सोई । अर्धनाम जग काकर होई ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कहैं कृष्ण सुनु अर्जुन भेदा । तुमसों कहौं मैं वेद निषेदा ॥
ब्रह्म सदा जो रहै अविनाशी । और सृष्टि सकलो पुनि नाशी ॥
रहित नाम अविनाशी होई । पूरण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥

ना कहुं आवै ना कहुँ जाई । सब घट माही रह्यो समाई ॥
नहीं दृष्टि देखन महँ आवै । सकल सृष्टिके माहिं रहावै ॥
रूप वरण कछु वरणि न जाई । कोटि सूर्य्य तेहि तेज समाई ॥
तिनका नाम सदा अविनाशी । रहै निरंतर अंतरवासी ॥
अक्षय है सब जक्त पसारा । व्यापक रूप रहा भरिभारा ॥
तिनकी भक्ति करे जो कोई । आवागमन कबहुं नहिं होई ॥
अध्यातम आतम सो ज्ञानी । सबमें ऐकै ब्रह्म समानी ॥
कर्म नाम करता है सोई । दुख सुख कारण करता होई ॥
अद्‌भुत रूप सरूप है भाई । तेहि समान रूप नहिं भाई ॥
कोटि सूर्य्यको तेज समाही । अर्द्धदेव सब देवन माही ॥
रहो समाइ जो सकलौ छाई । अर्द्धनाम सकलौ जग लेई ॥
व्यापक सदा सकलमें सोई । महा प्रलय जब आवै भाई ॥
लै सौ वर्ष अवधी रहई । रैनि दिवस छै मास जो होई ॥
दिवस एक देवन कर सोई । छः मास अवर जब जाई ॥
राति एक ताकर होइ भाई । ऐसे वर्ष दिवस नर होई ॥
दिवस एक देवनकर सोई । तासे मास वर्ष गनि लेई ॥
ऐसे वर्ष देवकर कहिया । अहनिशि एक ब्रह्म पुनि तहिया॥
दिवस एक ब्रह्माकर होई । चारि पहर चारिउ युग सोई ॥
रातिउ ऐसे जान सुभाऊ । बरतै चारिउ युग पर भाऊ ॥
दिवस औ राति जब ऐसो जाई । पक्षमास पुनि वर्ष कहाई ॥
सात वर्ष ब्रह्मा पर वानी । काल आइ सो करै तब हानी ॥
ब्रह्म प्रलय जब आवइ भाई । रोमस रोम परै खहराई ॥
जब २ प्रलय काल जब आई । एक रोम रोमस गिरिजाई ॥
बहुत प्रलय ऐसे चलि गयऊ । आदि अंत काहु नहिं पयऊ ॥
अष्ट अध्याय जो कहा बखानी । अक्षर ब्रह्म योग है ज्ञानी ॥

कहै कबीर सुनु धर्मनि धीरा। बूझ भेद तुम गहिर गभीरा॥
जो यह कछू प्रभाव बखाना। पै निर अक्षर भेद न जाना॥
जो निर अक्षर भेद न जानै। कैसे सार शब्द पहिचानै॥
जो निर अक्षर भेद हि पावै। सो त्रिलोक बंधन मुक्तावै॥
अक्षर सार अपार जो होई। बिनु सत गुरु पावे नहिं सोई॥
सतगुरु मिलै शिष्यको जबही। सार शब्द पावे पुनि तबही॥
हंस रूप ताकर पुनि होई। सो तौ हंस निनारा सोई॥
यह जाने नहिं ताकर भेदा। कितनौं पढ़ै नर चारिउ वेदा॥
सार शब्दका मर्म न पावै। सो कैसे सत्यलोक सिधावै॥
जो मानै तेहि लोक पठाऊ। सार निरक्षर अलख लखाऊ॥
खान प्रवान शब्द टकसारा। यमको चीन्है उतरे पारा॥
घटवारा जब पावै चीन्हा। तब हंसन कह आवै दीन्हा॥

छन्द--सुरतिमंत जो हंस होवै ताहि दीजै पान हो।
नत दशौ दिशा घाट रोकै मागि शब्द निशानि हो।
देखि हैं जब शब्द सांचा चीन्ह पावै लोकको।
अपने कंधे तेहि उतारैं मेटि संशय शोकको॥

सोरठा--धर्म हमहि सो कौल, कीन्हो अति आधीन हो।
हंस शब्द सत बोल, निमिष माहि पहुँचाइया॥

इतिश्रीमदुग्रगीतासुज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादेऽक्षरयोगव्याख्यानोनामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अर्जुन शास्त्र मतो है नीका। कर्म धर्म सब कारज जीका॥
शास्त्र वेद पुरान जो आही। मन वच कर्म अर्जुन गहु ताही॥

बहुत लोग मानुष मोहि जानैं । दुख सुख व्यापक माही सानै ॥
बड़े भाग सो प्रानी होई । अन्तर पवन रहौं मैं सोई ॥
पवन सकल में बर्तें भाई । बाहर भीतर फिरै सदाई ॥
लिप्त होइ पुनि रहै निनारा । ऐसा अद्भुत खेल हमारा ॥
बहुत साधु एक करि पूजै । सर्व मध्य आतम कहबूझै ॥
बहुतक प्रीति भाव जो जानै । साहेब सेवा हित कै मानै ॥
बहुतक तीनो देवन मानै । अवर सकल मिथ्या करि जानै ॥
मोकहयहि विधि जो कोइ ध्यावै । तेहि विधि माह परम सुखपावै ॥
सर्व व्यापक मैं हौं भाई । मोहि विन दूजा और न कोई ॥
मेरे मित्र दुष्ट नहिं कोई । जो ध्यावै पावै पुनि सोई ॥
एक भाव मैं सबसो रहेऊ । जैसे अग्नि भाव सो कहेऊ ॥
जबै काल जड़ आवै भाई । बैठे लोग तापन कह आई ॥
चहुँदिशि लोग अग्नि बिच होई । सब तापै काया नर लोई ॥
अग्नि काहु के मित्र न जानै । और न काहू दुष्ट हि मानै ॥
सब कह लागे एक सम भाई । ऐसे रहौं मैं सहज समाई ॥
जो कोइ पूजा देवन लावै । सो नर देव के लोक सिधावै ॥
जो ऐसा होइ भक्त हमारा । ता कह पठवउँ स्वर्ग दुवारा ॥
जो कोइ मोसे चित्त लगावै । सुख संपति बहु शोभा पावै ॥
ऋद्धि सिद्धि बहुतैं कै देऊं । आपन कै मैं ताकह लेऊं ॥
सदा सर्वदा बात न हेरूं । दुख संताप ताहि कर फेरूं ॥
अर्जुन परम भक्ति मोहि भावै । जो कोइ मोसों मन चितलावै ॥
नौ अध्याय इहां लघु होई । राज योग गून है सोई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । बहुविधि कृष्णजो करैं तमासा ॥
कर्म धर्म कहि जग समुझावैं । अलक पुरुष कैसे लखि आवैं ॥

ज्ञानवंत तुम धर्म निआगर। सत सुकृत गहु परम उजागर॥
करो विचार संतकी रीती। मन वच करु सतगुरु परतीती॥
इन्ह तो शास्त्र ज्ञान विचारा। कम फंद जीवन्ह सब डारा॥
कोइ भक्ति जो इनकी करई। ऋद्धि सिद्धि सुख संपति लहई॥
बहुत भांति तेहि देइ बड़ाई। राज पाट इन्द्रासन लाई॥
आवागवन न मेटा जाई। बहुविधि चीन्हो मन चितलाई॥
दाता भुक्ता होवे आपै। पै कोऊ नहिं छूटा पापै॥
आवैं जाइ सकल जग लोई। कबहुँ न छूटै बंधन सोई॥
बहुविधि चीन्हो मन चितलाई। आवागवन न मेटा जाई॥
बंधन सतगुरु तुम्हरो तोरा। तुम कह नहिं व्यापैं यम चोरा॥
सतगुरुका है पंथ अपारा। जो बूझैं सो उतरे पारा॥

छन्द—धर्मदास तुम बूझि देखो भेद सतगुरु अगम है।
तीनि लोक अरुझाइ कारण वेद शास्तर सो कहै॥
बूझि देखो अंग सब मैं आयो तोरन फंदको।
हंसको मुक्ताय यमसो मेटिहौं दुख द्वंदको॥

सोरठा--सतगुरु शब्द अपार; वार पार कोइ ना लहे।
हंस शब्द आधार, ताहि मुक्ति पाछे फिरे॥

इति श्रीमदुग्रगीतायां ज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

महाबाहु अर्जुन सुनु भाई। दस अध्याय कहेउँ अर्थाई॥
विभूति योग मैं तोहि सुनाऊं। सकलरूप तोहि वरनि सुनाऊं॥
जल थल पूरण मैं ही व्यापो। कीट पतंग सर्वमें आपो॥

मेरी गति मति कोइ न जानै । सबै सृष्टि नारायण मानै ॥
ऋषि मुनि देव देवता भाई । उनहू मेरी गति नहिं पाई ॥
मैं तो गति मति सबकी जानौं । व्यापि रह्यो मैं सकल जहानौं ॥
देवि देवता आदि जो मैं ही । ऋषि मुनि सृष्टि अवतारजु लेही॥
मोहिते आदि और नहिं कोई । सबके आदि करा रचि सोई ॥
पिताकी खबरि पुत्र नहिं जानै । कैसे पितुकी आदि बखानै ॥
आदि अन्तको मेरी पावै । जग रचना सब पुत्र कहावै ॥
विभूति रूप संक्षेप जो कहिया । अर्जुन पूंछ कृष्ण पुनि कहिया॥
सब व्यवहार विभूति सुनावौ । रंचक मोसे कछु न दुरावौ ॥
कृष्ण कहै सुनु कुंतिकुमारा । तोसों कहौं सकल विस्तारा ॥
पहिले सकल जोति जग जो है । शशि सुरयकी कीरनि मोहै ॥
सूर्य रूप मेरो है भाई । दूजा भाव जनावौ जाई ॥
शीतल पूरण निर्मल चंदा । है मेरो यह रूप अनंदा ॥
बलीदान यज्ञ जो ठानो । बावन रूप मेरो पहिचानो ॥
सिरजा पवन सबै सुखदाई । मैं ही पवन रूप हौं भाई ॥
चारि वेदमें साम जो वेदा । मेरो रूप सुनो तुम भेदा ॥
व्यास रूप मेरो है भाई । नारद भाव धरउं मैं आई ॥
देवन माहिं इन्द्र पुनि मैं हौं । दानी बलिराजा सो मैं हौं ॥
विषधर माहिं वासुकी हम ही । ईश्वर माहिं महेश्वर हम ही ॥
इन्द्रिय भुक्ती मनसो मैं ही । राजन माहिं राजु करौं मैं ही ॥
मिरगन्ह मध्य सिंह गति मेरी । वृक्षनमें पिप्पल मोहिं हेरी ॥
नदी माहि हम ही हैं गंगा । समुद्र रूपमें लहरि उतंगा ॥
मुनिवर कपिल हमी हैं भाई । परशुराम योधा हौं भाई ॥
नरसिंह रूप जो मेरो होई । रामचन्द्र तन रूप जो सोई ॥
दत्तात्रय आनंदित रहऊँ । ऋषिन मध्य पाराशर अहऊं ॥

जल जीवन जलसाइ कहाई । मेरो रूप सुभाव रहाई ॥
ज्वारिन महँ मैं जुवा कहावा । जुवा रूप मेरो रूप सुभावा ॥
जहँ लगि जगमें होइ लराई । मेरो रूप लराई भाई ॥
जग परपंच जहां लग होई । परपंच रूपमें रहौं समोई ॥
वाद विवाद करै जो ज्ञानी । वाद रूप मोकहँ पहिचानी ॥
शंकर रूप मोर है भाई । मृत्युकालमें रहौं समाई ॥
पाप पुण्य धारौं दुइ देही । कर्म धर्म रचना है एही ॥
जग रचना विभूति मेरी होई । जल थलमें मैं रहौं समोई ॥
कहँ लगि वर्णों वरणि बखानौं । सब वसुधामें मोहीं जानौं ॥
मोहिं छोडि कोइ और न दूजा । तीन लोकमें मेरी पूजा ॥
देवी देवता पूजा लावैं । सो सब पूजा मौं कहलावैं ॥
विभूति रूप अध्याय है दशवां । इह लगि भाव बतायउँ दशवां ॥

कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनौ चितलाई । धर्मदास तुम लेहु अर्थाई ॥
तीनि लोक नायक भगवाना । तिन कह पुरुष दीन्ह रजधाना ॥
ताते क्रीडा करै अनंदा । खेल अनेक खेल गोविंदा ॥
तीनि लोक बाजी दइ राखा । परपंची अपने मुख भाखा ॥
सत्य कहइ सत्य भाव लखावैं । करि प्रपंच जीवन भरमावैं ॥
जीव जो मूल बीजके आही । इन पाया सत्य पुरुषके पाही ॥
बीज आदि तिहुलोक जो फूला । आपुहि जाने पुरुषहि तूला ॥
करि अभिमान पुरुष विसरावा । आपुहि पूरण पुरुष कहावा ॥
सबमें व्यापक आपुहि रहई । पुरुष भेद नहिं काहु सो कहई ॥
भेद कहैं उजरे पुर तीनो । आपन थापन ताते कीनो ॥
चारिहु वेद नेति जो गावैं । सद्गुरु रहित पुरुष बतलावैं ॥

जीव जन्तु राखैं अरुझाई । बीज पुरुष जो दीन्हो भाई ॥
जब नहिं बीज पुरुषपहँ जाई । तबै पुरुष हम कहँ उपजाई ॥
बीज अंकुरी लोक ले आवौ । धर्मराजते हंस छुडावौ ॥
सेवा वसि वहि दीन्हा राजू । अब मेटौ तौ सुकृतहि लाजू ॥
सुत हमार भया वरियारा । जेहि दीन्हों तिहुँलोकके भारा ॥
तुम अंकूरी सेवहु जाई । बार २ मैं कहौं बुझाई ॥
ताते मैं संसारहि आवा । पुरुष शब्द टारो नहिं जावा ॥
नाहिं तौ तीनौ लोकहि तारौं । धर्मराज ते सबै उबारौं ॥
जो जन अंश पुरुषके आही । सो सब आवे हमरे पाही ॥
अवर सकलजग काल बसेरा । नित २ प्रलय होत झकझोरा ॥
यहि कर काल पुरुष दियो नामा । तीन लोकते न्यारा धामा ॥
अध्याय एकादश आगे होई । काल सरूप बखानो सोई ॥
धर्मदास मन माहिं विचारो । काल रूप सब भाव निहारो ॥
जो तुम कही पुरुषकी आशा । सद्गुरु शब्द करो विश्वासा ॥

छंद–हंस कारण पुरुष पठयो तबै बिनती मैं कहौं ।
धर्म है अति बली तिहुँपुर सोई दुतिया करि रहौं ॥
जाऊं भवसागरहि जो बहु भांति मोसों युधि करै ।
यह सुनि पुरुषसत्य शब्द दीन्हों धर्मराज जेहि ना डरै ॥

सोरठा–सुनते शब्द संदेश, सुरति निरति हंसा गहो ।
पूरण पुरुष संदेश, बहुरि धरौ जग देह नहिं ॥

इतिश्रीमद्‌भगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
विभूतियोगव्याख्यानो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

अर्जुन कृष्ण सो बिनती ठानी। हे स्वामी तुम अन्तर्यामी ॥
दश अध्याय तुम वरणि सुनायो। ज्ञान विज्ञान जो मोहि बतायो॥
संन्यासकर्म और वाक्य सुनायो। आतम संयम योग बातायो ॥
प्रवृत्ति निवृत्ति जो मारग भाषा। कर्म योग मन दृढ करि राखा ॥
यह सब सुनिनिर्मल भयो अंगा। अब मोहि दर्शन भयो उमंगा ॥
होउ दयाल विराट देखावौ। मति मोकहँ तुम दूरि बहावौ ॥
जो मोहिं शक्ति न देखत होई। तौ अब शक्ति दीजिये सोई ॥
तुम ठाकुर हौ अंतरयामी। अब दर्शन बिन रहौं न स्वामी॥
अहो दयाल कृपा-निधि-सारग। दीनबंधु तुम पतित-उजागर ॥
तब हरि बोले चतुर सुजाना। इन नैनन्ह नहिं दर्शन जाना ॥
तुम तौ हौ निज भक्त हमारे। दर्शन तुम कह देउ पियारे ॥
यह सरूप काहू नहिं देखा। इंद्रादिक सुर नर मुनि शेषा ॥
सो दर्शन तुम देखा चैहौ। तीनि लोक हलकंप बढैहौ ॥
देखौ कालरूप जब मोरा। अर्जुन तुम तब रहौ न ठौरा ॥
डरपो बहुत होइ डर भारी। डरपे लोग सकल संसारी ॥
कहैं अर्जुन सुनु कृष्ण मुरारी। प्रथम देहु दृढता मोहि भारी ॥
जो मैं डरौं दरसको करई। बिनु मारेही मृतक होइ रहई ॥
सोई दृष्टि मोहि देव गुसांई। जेहि दरशे परसौं तुम पाई ॥
दिव्य दृष्टि अर्जुन कहँ दीन्हा। अर्जुन है मम दरश अधीना ॥
धारो रूप अकाश पताला। महा स्वरूप भयंकर काला ॥
माथ अनेक अनेकन्ह नयना। कर्ण अनेक बहुत मुख बयना ॥
नाक अनेक रु दंत अनेका। चितवत दृष्टि मारि है वेगा ॥
निकसि दाढ़ बाढ़े मुख भारी। तिन देखत जिव नाहिं सँभारी॥

वदन अनेक भरे औ रीते। ऋषिमुनिवर तहँ भये विपरीते॥
भुजधारी बहु बाहु बिराजें। ऐसे कैसो दरशन राजें॥
पाव पताल रहा जब जाई। शीश अकाश सातये भाई॥
भूषण भांति २ के छाजें। मुकुट अनेक शीश पर राजें॥
सूर्य चंद्रमा तहां रहाई। ऋषिमुनिवर तहँ विनती लाई॥
जहँ लगि देवी देवता आहीं। सब देखो तिनके मुख माहीं॥
अर्जुन देखि अचंभौ कीन्हा। अति डरि भये बहुत अधीना॥
देवता ठाढ़े अस्तुति करहीं। भौ व्यापैं विनु मारे मरहीं॥
किन्नर यक्ष गुणी सब ठाढ़े। कँपैं सबैं देखिके गाढे॥
राक्षस देखत भागे जाहीं। कोइ नेरे कोइ दूरि पराहीं॥
कोइ जन अस्तुति करे मनुहारी। अब रक्षा प्रभु करो हमारी॥
कोइ एक जन दुरि परिहरहीं। कोइ जन निहुरी दंडवत करहीं॥
ऐसे सृष्टि सकल जग देखा। तहवां रहे समाइ विशेखा॥
औ मुख देखा बहुत भयावन। जानौ अब चाहत है खावन॥
मुखमें तीनि लोक जो देखा। तहवां रहे समाइ विशेखा॥
जहँ लगि साधु असाधु कहावे। सो सब ताके मुखमहँ आवे॥
दुर्योधन देखा मुख माहीं। भीष्म द्रोणाचार्य जो आहीं॥
योधा चले सबैं मुख माहीं। कौरौ पाण्डव उदर समाहीं॥
कोस अड़तालिस कटक जो रहिया। सो सब मुखमें देखो तहिया॥
संसारी त्रैलोक पसारा। सो सब मुखके मध्य निहारा॥
नदी आवैं जस एकै धारा। सागर माहिं धसे सब खारा॥
ऐसे जग सब उदर समावे। मुख माहीं सबही चलि आवे॥
जैसे जोत चांदना होई। जीव जन्तु सब लेइ समोई॥
केतक डाढ़न माहीं अटके। केतक भागे फिरत जो भटके॥
कोइ कतहुँ जाने नहिं पावे। बहुरि २ मुख माहिं समावें॥

देखत अर्जुन बहुत डराये । मनमें धीरज नेक न आये ॥
विनय दंडवत करि बहु भाई । क्षमा करो अब मोहिं यदुराई॥
मोकहुँ सँभरन दे यदुराई । चित मेरो विभ्रम होइ आई ॥
तुम तौ पूरण पुरुष हौ सांई । रूप समेटो चित्त डेराई ॥
काल रूपते बहुत डेराऊँ । कृपा करो जिय मोर जुड़ाऊँ ॥

श्रीभगवानुवाच

कहैं कृष्ण अर्जुन सुनु बयना । डरपै जनि मूंदो दोउ नयना ॥
तुम कारण यह भेष बनावा । और काहु देखो नहिं पावा ॥
तुम तौ क्षत्रिय बहुत पियारे । तुम कारण यह रूप सवाँरे ॥
अस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई । इन कह मारौ बहु विधि भाई॥
जो कोइ युद्ध करन कहँ आवै । राज धर्म तेहि मारि गिरावै ॥
इन सबको हम मारिजो राखो । सो सब देख्यो अपनी आंखों ॥
ए सब हमरे मुखके माहीं । तुम कहँ दूषण एकौ नाहीं ॥
तुम्हरे यश कह कारज कीन्हा । अब लगि राखा तुम्हरे लीन्हा॥
आगे यही मृतक जो आहीं । तुम जग यश लेते कस नाहीं ॥
जगमें महा बाहु तुम होहू । अब तुम इन कहँ मारि विगोहू॥
देखै युद्ध सकल संसारा । यश कीरति तब होइ उदारा ॥
अरजुन डरपत बिनती कीन्हा । तुम कर्त्ता मैं सदा अधीना ॥
अब लगि तुम कहँ मैं नहिं जाना । अब जो कहौ सोइ परमाना ॥
विनय करौ तुम सुनहु गोसांई । बहु अपराध भये मोहिं सांई ॥
तुम संग सखा रूप हम डोलैं । ऊँच नीच बोल जो बहु बोलैं ॥
तुम तौ पिता सकल के होऊ । पालै मात पिता सुत सोऊ ॥
बालक लाख दोष जो करई । मनमें पिता रोष नहिं धरई ॥
तुम सो बैन कठिन मैं भाषा । सारथिके अपने रथ राखा ॥
कछू चूक हमसे जो होई । सो अपराध क्षमा कर सोई ॥

रूप देखावहु श्याम सरूपा । वेगि छिपावहु काल सरूपा ॥
मेरो जीव न धीरज धरई । अबहीं जानौं भक्षण करई ॥
दया रूप अपनो दिखलावो । चित वित मेरो ठौर मिलावो ॥
ना तौं चित वित मेरो जाई । कैसहु धीरज मोहिं न आई ॥
कालरूप तब लीन्ह सकेली । कृष्ण रूप धरि तब ही खेली ॥
शंख चक्र गदाधर जानी । मोर मुकुट पीताम्बर तानी ॥
विश्वरूप सम्पूरण भयऊ । अध्याय एकादश लगि कहऊ ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । कर कैसे यह काल तमाशा ॥
यह जग अन्धा उलटी रीती । अंधा मोल न फूटि मसीती ॥
अँधरे पंडित पढ़े पुराना । पढ़ि पढ़ि काहूँ भेद न जाना ॥
कृष्ण जो निजमुख गीता भाषा । काल स्वरूप देखायउ आखा ॥
तबहुँ न मूरख कालहि चीन्हे । ज्ञान हीन है मतिके हीने ॥
ज्ञान अगम मैं बहुत पुकारा । सब झूठे मिलि कहै लबारा ॥
मूरख सांच झूठ नहिं जाना । कैसे गुरू भेद पहिचाना ॥
भेद विना सो जन्म गवांवा । बार बार भग द्वारे आवा ॥
आवत जात महा दुख होई । जन्म बहुत धरि जाइ विगोई ॥
सतगुरू शब्द चीन्ह जो पावै । अजर अमर घर हंसा पावै ॥
धर्मदास सम हंस सुजाना । झूठो सत्य लेहु पहिचाना ॥
सांच झूठ में रहा छिपाई । चीन्हो ताहि गहौ चित लाई ॥
झूठे त्यागि सांच कह लागो । सत्य सुकृतमें तन मन पागो ॥
सत्यहिते जिव उतरे पारा । सत्य शब्द जियको कड़हारा ॥
सत्य गहै सत्यै मुख भाखै । अभ्यन्तर सत्यहि गहि राखै ॥
सत्यै कर्म धर्म तुम करहू । कर्म भर्म दोऊ परिहरहू ॥
सत्य व्यवहार सत्य मुख बैना । सत्य है लेन सत्य है देना ॥

सत्य सत्य तुम वर्तहु भाई । यह उपदेश हमारो आई ॥
यह संसार सत्य नहिं सूझे । सत्यहि बूझे झूट अरूझे ॥
जैसे नलिनी सुवना गहई । ऐसे वह जग फंदा रहई ॥
सत संगति ते उठिके भागे । नाच पवारे मन अनुरागे ॥
विषय वासमें तन मन खोवे । उत्तम देही जानि विगोवे ॥
यह संसार कालकर फन्दा । विन सतगुरु नहिं छूटे बंदा ॥
जब अक्षर निरअक्षर जाने । सतगुरु शब्द करै परवाने ॥
सार शब्द मैं आनि पुकारा । जो बूझै सो उतरै पारा ॥

छंद—वहो बहुविधि बूझि देखों धर्म दारुण काल हो ।
वेद पुराणमें सार गीता जस कह्यौ विकराल हो ॥
त्रिशव सब भोजन करै यह सर्व वसुधा पाल हो ।
दया जाके ताहि आवे सब जीव राखे हाल हो ॥

सोरठा—ज्योति सरूपी काल, सदा अखंडित लव वरै ।
कबहुँ न होय दयाल, जीवजंतु सब लै जरै ॥

इति श्रीमदुग्रगीतायांब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
विश्वरूपव्याख्यानो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

कहैं अर्जुन सुनु अन्तर्यामी । पूरण पुरुष अगम तुम स्वामी ॥
ज्ञान सृष्टि भक्ति अधिकाई । निर्गुण सगुणमें को अधिकाई ॥
यह संशय उपजे जिय मोरा । कृपा करो तुम करौं निहोरा ॥
अर्जुन जो पूछेउ परभाऊ । सो अब प्रकट बखानौ दोऊ ॥
ज्ञानी अधिक करे जो ज्ञाना । निशि वासर रहै ज्ञान समाना ॥
भक्ति करे जो मन चित लाई । निस दिन सुमिरै हम कहैं भाई ॥
बहुत भांति के सेवा लावे । प्रेम मग्न मेरो यश गावे ॥

सुख संपति सुत भवन न भावै । काम क्रोध मद लोभ बहावै ॥
ऐसा भक्त मेरा मन भावे । मोक्ष मुक्ति परम पद पावे ॥
ज्ञानते अधिक भक्ति है भाई । निसदिन मोमें रहा समाई ॥
निर्गुण सगुण है रूप हमारा । वह निरूप यह खेल पसारा ॥
निर्गुण ब्रह्म सकल घट माहीं । सगुन रूप हमारो आहीं ॥
बहुत साधु निर्गुण कह धावे । कर्म धर्म लै दूरि बहावे ॥
निर्गुण भक्ति बहुत अति भारी । कोइ कोइ विरले हैं व्रतधारी ॥
छाँडै इंद्री तन मनकर्मा । मनसा कबही जाइ न भर्मा ॥
पंच पचीसो को परमोधै । अभ्यन्तर आतमको शोधै ॥
संकल्प विकल्प जब मनसे छूटैं । काल कलेश नाता कहँ लूटैं ॥
सदा नाम जो रहै लवलीना । सो साधू पुनि ब्रह्महि चीन्हा ॥
पारब्रह्म है अलख अपारा । हाथ पाउं नहिं देह सँवारा ॥
क्षर अक्षर कबही नहिं होई । पूरण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥
अलख रूप सदा अविनाशी । रहित चिंत अचिंत उदासी ॥
ऐसा ब्रह्म जो रहित अकेला । सो साधू है अविगति मेला ॥
ऐसे निर्गुण भक्त पियारे । तिन अपना निज कारज सारे ॥
ताते कठिन भक्ति यह भारी । सगुण भक्ति है मोहि पियारी ॥
शुचि संयम एकादशि करई । मन बच कर्म मोहि चित धरई ॥
अर्पणके सब प्रभुके नामा । सुफल होइ सब पूरण कामा ॥
सदा सर्वदा मो कहँ ध्यावे । मोक्ष मुक्तिमाहीं फल पावे ॥
और सेवा सुमिरण जो करई । निशि दिन मोकहँ चर्चत रहई ॥
ध्यान धरै जो श्याम सरूपा । मोर मुकुट शिर बनो अनूपा ॥
पीत वसन बैजंती माला । कानन कुंडल नैन रसाला ॥
ऐसी भांति ध्यान जो करई । सो साधू भवसागर तरई ॥
ए अर्जुन मोहि सब विधि भावै । भक्ति करै मेरो यश गावै ॥

हम तो प्रेम प्रीति के भूखे । साधु संत कबही नहिं दूखे ॥
हमरी आज्ञा साधु जो धावै । महा पदारथ मोक्ष सो पावै ॥
जो तुम सो कछु भक्ति न होई । मानहु मोर कहा निजु सोई ॥
क्षत्री धर्म न छोडिय भाई । एहिते तुम पुनि पहुँचो जाई॥
धनुष बाण तुम लेहु उठाई । युद्ध करहु तुम अर्जुन जाई ॥
मनमें मोह कछू नहिं कीजे । कारण करतामें चित दीजे ॥
जो तुम युद्ध जीतिकै आवौ । पदवी अटल परम पद पावौ॥
द्वादश अध्याय भक्ति जो भाई । कृष्ण बखाना यह अध्याई॥

कबीर उवाच

कहै कबीर धर्मनि हितकारी । भक्ति कहेउ जो कृष्ण मुरारी॥
निर्गुण भक्ति सत्य है आदी । सगुण भक्तिहु जन्म न वादी॥
पै हम अगम बखानी ऐसी । करै विवेक विचारै तैसी ॥
निर्गुण सगुण दोउ उर झेला । बूझेगा कोइ संत सुहेला ॥
क्षर अक्षर माया है भाई । निरअक्षर सद्गुरु समुझाई ॥
ताकर भेद न काहू पाया । मूरख धरि २ जन्म गवाया॥
सद्गुरु शरण जीव जो आवै । काल फांसते जिव मुक्तावै ॥

छन्द—निर्गुण सगुण दोउ छांडौ संधि सद्गुरु चित धरो ।
सार शब्द अपार अविगति क्षर अक्षर निर अक्षरो ॥
भेद बूझो अगम गमि करि कछु न संशो घट रहो ।
सोई हंसा अमी पीवैं पुरुष को दर्शन लहो ।

सोरठा—सोइ भक्ति निज सार, जेहिते पुरुषहि परशिहो ॥
बहु विधि कहौं पुकारि, भक्ति हीन दरशै नहीं ।

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे भक्ति-
योगव्याख्यानो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन सों बोले गोपाला । निर्मल ज्ञान सुनौ यहि काला॥
माया ब्रह्म सदा संयोगा । माया संग जीव पुनि भोगा ॥
तीनिउ गुण मायाते भयऊ । रजगुण तमगुण सतगुण भयऊ॥
रजगुण ब्रह्मा सृष्टि पसारा । सतगुण पोषण विष्णु विचारा॥
तमोगुण रुद्र सँघारै सोई । तीनिउ पुत्र माया के होई ॥
पृथ्वी तेज वायु आकाशा । जल मिली पांचउ तत्त्व प्रकाशा॥
दश इंद्री कीन्हो बंधाना । कर्म पांच २ है ज्ञाना ॥
मन बुद्धि चित अहंकार जो कीन्हा। इच्छा दोइ यक धीरज चीन्हा
दुख सुख क्षेत्र जो कीन्हा माया । क्षेत्रज्ञ पुरुष अविगति समाया॥
क्षेत्र देह क्षेत्रज्ञ जिव होई । चेतन जीव अचेत समोई ॥
देह धरेते जिव दुख पावै ।माया जड़ कछु शोक न आवै॥
आदि अनादि ब्रह्म औ माया । कारण सृष्टि धरे दुइ भाया ॥
जैसे वृक्ष २ की छाया । वृक्ष विना छाया नहिं माया॥
ऐसे ब्रह्म सदा यक संगा । कारण सृष्टि रच्यो अर्धङ्गा ॥
अर्जुन व्यापक जीवहि जानो । अतो न न्यारो ब्रह्म पिछानो॥
जीवातम माया भयो अंगा । परमातम देखहु सब संगा ॥
पारब्रह्म सो लिप्त न होई । हाथ पांव इंद्री नहिं कोई ॥
सर्वेन्द्री जाके चहुँ ओरा । जहां तहां परकट सब ठौरा ॥
नैन चहूँ दिशि देखैं सोई । कानन सर्व गुण सुने है जोई॥
मुख सकलौ जो खाय खवावै । पाव पवनते अधिक जो धावै॥
हाथ ऐसे जो रच संसारा । नासा सकल वास विस्तारा ॥
जो कहिये तो सकलौ सोई । नाक होई तो कछु न होई ॥
जाके कोई पुण्य न पापा । अलख रूप सो आपे आपा ॥

ऐसे पारब्रह्म पहिचानौ । ताकी महिमा वेद बखानौ ॥
जो कोइ साधू साधन करई । इंद्री त्यागे गुण परिहरई ॥
काम क्रोध मद लोभ न आवे । तंतु प्रकृति लै दूरि बहावे ॥
माया रहित ब्रह्म है सोई । ताको आवागमन न होई ॥
माया लिप्त रहै संसारी । लोभ मोहमें भूले भारी ॥
कैसहु नही ब्रह्म कहँ बूझै । अंध नयन हृदये नहिं सूझै ॥
सुख संपति हित चितसो गहई । ता परताप नर्क सो परई ॥
सूकर श्वान जन्म सो धरई । माया लीन सदा सो करई ॥
चौरासी कर्म जेहि गुण होई । निष्कर्महि जानै नहिं कोई ॥
आतम परमातम नहिं जानै । पारब्रह्म मन कबहिं न आनै ॥
रहत समीप सदा सुख सोई । न्यारा कबहीं नाहिं बिछोई ॥
जैसे सूर्य्य जो रहै अकासा । ऐसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ है वासा ॥
कर्म लिप्त जिव नाम धराया । पारब्रह्म संयोग बनाया ॥
माया बिना ब्रह्म जो होई । पारब्रह्म पुनि कहिये सोई ॥
आपुन आपा खोइ भुलाना । माया संग सदा सुख माना ॥
ता कारण भ्रम चौरासी । फिरि २ भवसागरके वासी ॥
ताते निर्गुण भक्ति न होई । सगुण भाव बतायो सोई ॥
कर्म करिय करि निर्मल होई । ऐसो तारो सब नर लोई ॥
मन वच कर्म मोहि चित राखै । मेरो ध्यान सदा अभिलाषै ॥
यहि प्रकार नर मोकहँ गावै । सुख संपति धन लक्ष्मी आवै ॥
ब्रह्म यज्ञ त्रैदश अध्याई । क्षेत्र क्षेत्रज्ञहि वरणि सुनाई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा भेद सो काल प्रकाशा ॥
कहिं २ निर्गुण सगुणे ल्यावे । पारब्रह्मते दूरि बहावे ॥
काह कहौं कहँलगि गोहरावौं । अंधहि मारग कैसे पावौं ॥

दिवसहि लोक न सूझे भाई । सूर्य्यहि कैसे दूषण लाई ॥
ज्ञान अपार करउ परकाशा । जैसे सूरज जोति अकाशा ॥
चहुंदिशि जो उज्यारा आही । नैन विना अंधियारा ताही ॥
ज्ञान दृष्टि होई नहिं सूझै । सतगुरु मारग कैसे बूझै ॥

छन्द—ब्रह्म ज्ञान कहि २ सुनाव बहुरि आन कर्म सो ।
आपकोही स्थापि बहु विधि सब जीव राख भर्म सो ॥
कर्म धर्महि भर्म त्यागे बूझि सतगुरु भेदको ।
अगम मारग वेदते जो बूझि वेद निषेद को ॥

सोरठा—ऐसो मतो अपार, वेद पार पावे नहीं ।
पुरुष शब्द नीनार, पुष्प बास जैसे रहे ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

बोले कृष्ण भक्त—हितकारी । अर्जुन सो अस वचन उचारी ॥
आगे बहुत ज्ञान समझाया । पै अब अगम करो तुम दाया ॥
जौन ज्ञान सुर नहिं पहिचाने । महिमा चारो वेद बखाने ॥
अब तुम हृदया धरउ छिपाई । ऐसों ज्ञान नहिं प्रकटै भाई ॥
प्रथम तत्त्व महि पुरुष सवारा । प्रकृति तत्त्व तेहिमें अनुसारा ॥
कर्म बंध महि तत्त्वहि रहई । कर्म विधी बंधन सो कहई ॥
सब उत्पति महि तत्त्वते होई । प्रलय काल सब ताहि समोई ॥
आदि आनादिते महि चलिआई। काहु जाकी अन्त न पाई ॥
महि तत्त्व रूप ब्रह्मकी इच्छा । माया ब्रह्म समीप समीक्षा ॥
ताते तीनिउ गुण जो भयऊ । सतरज तमगुण उतपन कियऊ॥
ताके लक्षण करौं बखाना । तीनउ व्यापक सकल जहाना ॥

प्रथमें सतगुण सत्तै जानौ। शील लाज सन्तन हित मानौ॥
प्रभुके सुमिरण रहै समाई। भक्ति भाव सन्तन सुख दाई॥
शुचि संयम स्नान जो करई। जप तप दान पुण्य मन धरई॥
निशिदिन चित रहै स्थिर भाई। सत्य संतोष जो सदा रहाई॥
यह लक्षण सत्त्वगुण जो जाना। ताकी गति संक्षेप बखाना॥
ऐसी भाँति काँच जो होई। स्वर्ग लोक सुख भुक्तै सोई॥
बहुत भाँति सो सदा अनन्दा। सत्त्वगुण विष्णुभाव गोविंदा॥
रजोगुण ब्रह्मा भय उतपानी। भूषण भोग सदा रुचि मानी॥
बहुत भाँति के वस्तर भावै। घोडा हाथी रीझ बढावै॥
बहुत दामके चाहै गाठी। बुद्धि फिरै भक्तन सो नाठी॥
जहाँ तहाँ मैं मेरी बोलै। सुख संपति कह धावा डोलै॥
सुखसंपति कछु काम न आवै। हरिबिन मूरख जन्म गवावै॥
यह लक्षण रजगुणके भाई। अन्तकाल मध्यम गति पाई॥
तमोगुण रुद्र धरो जो देही। काम क्रोधके सदा सनेही॥
निशिवासर रहै अहंलपटाना। आपन सम काहू नहिं जाना॥
क्रोधहि लिये करै सब कर्मा। भीतर रोख उपर तकै प्रेमा॥
देवि देवता बहुत मनावैं। अन्त समय कोइ काम न आवैं॥
आलस निद्रा वसै शरीरा। काहुकी नहिं व्यापै पीरा॥
तमोगुण लक्षण यह व्यवहारा। अन्त समय बहु करै पुकारा॥
यमके दूत त्रास बहु देही। गति निकृष्टमें बासा लेही॥
नर्क बासमें बासा लेई। योनि अघोर सदा भरमेई॥
तीनौ गुण बरतै सब अंगा। पलपल छिन छिन तीनौ रंगा॥
तीनौ गुण रहै देह समाई। ता कारण भरमैं सब भाई॥
जिन साधुन गुण व्यापै नाहीं। सो तौ आवैं हमरे पाहीं॥
तीनउ गुणते न्यारा खेलै। ज्ञानेन्द्री ले मनहि सकेलै॥
ऐसा साधु मुक्ति गति पावै। आवागमनकी पीर मिटावै॥

अर्जुन उवाच

कहै अर्जुन तुम सुनहु भुवारा । गुण तीनौ कस होइ निनारा ॥
करनी रहनिते साधु सो रहई । कैसे इनते न्यारा कहई ॥
इन बिन कर्म कछू नहिं होई । कैसे कै निष्कर्मी सोई ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कहैं कृष्ण पूछेउ तुम नीका । मेटौ संशय सकलौ जीका ॥
तीनौ गुण हैं नर्ककी खानी । पैं सत्त्व गुणते नर उतपानी ॥
ताते सत्त्वगुण अधिक महातम । करै भक्ति चीन्हे परमातम ॥
जो सत्त्व गुणमें बास करई । इच्छा फल मनमें नहिं धरई ॥
दुख सुख दोऊ एक समाना । भला बुरा कछु मनहिं न आना॥
मित्र शत्रु कोइ दृष्टि न आवै । सुत औ अरि दोउ एक सुभावै ॥
पाप पुण्य की करै न आसा । निशिवासर हरिचरण निवासा॥
रहै उदास सदा जग माहीं । शीत उष्ण व्यापै नहिं ताहीं ॥
आनँद रूप सरूप है जाहीं । जगके सुख दुख व्यापैं नाहीं ॥
देहीको आपन नहिं जानै । ब्रह्म रूप न्यारा पहिचानै ॥
सुत दाराकी कौन चलावैं । जगके बन्धन सब मुक्तावै ॥
ऐसी रहनि जो साधू होई । व्यापक गतिको पावै सोई ॥
यह तो ज्ञान अगम मैं कहिया । अर्जुन राखो मन चितगहिया॥
चतुर्दशाध्याय कहेउ जो कृष्णा । त्रिगुण विभाग कहेउ संपूर्णा॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ मम पासा । सत्य पुरुष चीन्हौं धर्मदासा॥
जाते पुरुष प्रकृति जो भयऊ । माया ब्रह्म भाव दोउ ठयऊ ॥
महि तत्त्व कारण जग निर्माया । तीनिउ गुण पग तेहि भाया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा । इनते जगत रच्यो सब सामा॥
इनते पुनि अवतार अनेका । जन्म धरै युग युग फिरवैंगा॥

ज्ञान सत्य यह कृष्ण सुनाया । पै फिरिकै आपा ठहराया ॥
आदि पुरुषते परे जो दूरी । कैसे पहुँचै लोक हजूरी ॥
यह तौ आपा कह ठहरावे । ब्रह्मज्ञान कहि कहि समुझावै॥
जो नहिं थापे आपा भाई । कैसे चले तिहुँलोक बड़ाई ॥
राजनीति सब आप मिलावै । जाते देश न उजरन पावै ॥
पुरुष भेद जो पावइ लोई । तौ तीनिउ पुर ऊजर होई ॥
तेहि कारण तीनिउ गुण फंदा । जीव जंतु सब इनकू बंधा ॥
विष्णुरूप सत्त्वगुण जो कहिया । सत्त्वगुणसोकारजनहिंलहिया॥
अपने मुख जो कृष्ण सुनाया ।तबहुं न मूरख मोहि पतियाया॥
अंकूरी जीव मोहि पतिआई । हंस होइ सत्य लोक सिधाई ॥

छंद—पुरुषते प्रकटो निरञ्जन बीज माया सँगदई ।
सेवा बसि तिहुँलोक पायउ करण कारण सो भई ॥
करै करावै मन जो भावै थापि आया आपको ।
पुरुष सो जिव रहे न्यारै लागि इनके आपको ॥

सोरठा—सुनु धर्मदास सुजान, सतगुरु विना न दर्शई ।
गहो शब्द निर्वान, जेहिते पुरुष परसि हो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे त्रिगुण-
विभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन सो बोले अस बानी । कृष्ण सरूपी चतुर विज्ञानी ॥
त्रिगुणविभागयोग कहो ज्ञाना । अब पुरुषोत्तम योग बखाना ॥
वृक्ष भाव है यह संसारा । ऊर्ध्व मूल अध है तेहि डारा॥
उलटा वृक्ष नीचे हैं शाखा । यह संसार वृक्ष सम भाषा ॥
पातहि पात तरु डारहि डारा । फल लागा विनु फूल रसाना ॥

अर्जुन उवाच

अर्जुन पूछहि सुनु भगवाना । वृक्षके वर्णन करौ बखाना ॥
कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमारा । वृक्ष शरीर रच्यो व्यवहारा ॥
ऊपर मूल तर डार बताऊँ । शाख पत्र सब तोहि सुनाऊँ ॥
मूल वृक्ष है पुरुष अगोचर । शाखा ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥
संसारी यहि गुणते आवै । बृन्दबृन्द फिरि २ उपजावै ॥
साधु सन्तको आतम ज्ञानी । प्रभु पूरणकी गति पहिचानी ॥
आवागमन तिन्हैं जो नाहीं । रहै समीप पुरुषके पाहीं ॥
कहैं अर्जुन तुम वृक्ष बखाना । सो तौ आवागमन समाना ॥
साधुको आवागमन न होई । कैसे वृक्ष न जामैं सोई ॥
अब तुम सुनौ हौ चतुर सुजाना । निर्मल तोहि सुनावौ ज्ञाना ॥
निष्कामी इच्छा नहिं जाहीं । असंग अस्त्र लै काटै ताहीं ॥
असंग अस्त्र सब वृक्षहि काटा । जरा मरणको छूटौ घाटा ॥
सोइ साधू मन चलन न पावै । बाहेर जाते भीतर ल्यावे ॥
जैसे पुहुप बास है भाई । पवन सरूपी लेइ समाई ॥
ऐसे इन्द्री जिव है बासा । मन दौरे इंद्रिन के पासा ॥
इन्द्री साथ महा सुख माने । अंतकाल रहु तेहि पछिताने ॥
इन्द्रिय वश जो मन नहिं होई । पूरण ब्रह्ममें रहै समोई ॥
मन इन्द्री सो रहै निनारा । सोई पावै मुक्ति के द्वारा ॥
ऐसा साधू कोई भाई । कोटिन मध्ये एक रहाई ॥
अर्जुन कहैं परमपद कैसा । कहै कृष्ण सुनु अर्जुन ऐसा ॥
कोटिन सूर्य्य एक सम होई । कोटिन चन्द्र पूरण है सोई ॥
तत्रो न बूजौ ब्रह्म उजियारा । परब्रह्म है अपरं पारा ॥
अर्जुन कहै सुनो प्रभु मेरे । मैं आधीना दास हौं तेरे ॥

जब नर नींद करै सुख सोवे । सुपुपति लिये मगन सो होवे॥
और जब प्रलय होइ संसारा । रहै लीन सब ब्रह्म मझारा ॥
ए गतिभक्तिते मुक्ति कहावे । पै काहेते आवे जावे ॥
सुनु अर्जुन मैं कहौं बखानी । भेद न जा नर अज्ञानी ॥
संशय लीन मगन होइ सोवै । ताते फिर २ संशय होवै ॥
प्रलय घात जिव ब्रह्म समाई । मनोकामनाते फिरि आई ॥
जैसे कामना होवे लीना । तैसे कामना होवे चीना ॥
ताते आवागमन न छूटै । फिरि २ जन्म योनि धरि लूटै॥
जो चीन्है अभ्यन्तर आतम । चेतन रूप चिन्है परमातम ॥
सबके अंतर मैं ही व्यापो । करण करावन मैं ही आपो ॥
जैसे तिलमें तेल रहाई । जैसे काष्ठमें अग्नि रहाई ॥
अग्नि रूप हो अन्न पचावौ । सब जीवनके मध्य रहावौ ।
ऐसे व्यापक मैं अभ्यन्तर । चारिउ भोजन करौं निरन्तर ॥
चारिउ भोजन सुनो सुजाना । जो मुखमें सब आनि समाना॥
भक्षणमें एक भोजन भाई । डाढते चाभि २ सो खाई ॥
दूसर भोजन कहावे सोई । पहित भात जो भोजन होई ॥
तीसर भोजन जो नाम कहावै । डाढ दांत ताहि नहिं पावै ॥
सीरा सिरखन कढी कहावे । बिना दांतन रसना ले जावे ॥
चौथा भोजन नाम जो कहिया । दांत लगाय रस चूसे जहिया॥
यह सब भोजन मैं ही करऊँ । उदर सकलविधि मैं ही भरऊँ॥
ब्रह्मरूप अविनाशी मोरा । पूरण अंश आदि यहि थोरा ॥
क्षर अक्षर दोउ ब्रह्म स्वरूपा । क्षर बिन रहै अक्षर अनूपा ॥
अक्षर पारब्रह्म सो आही । दुख सुख कछु व्यापै नहिं ताही॥
ब्रह्मो निशि दिन खोजत रहई । ताकर वार पार नहिं लहई ॥
जैन यती संन्यासी ढूँढै । बहुत मुडावे बहुते चूडै ॥

ताकर वार पार नहिं पावे । खोजत २ जन्म गँवावे ॥
योगी जंगम और दरबेशा । बहु विधि रूप बनावे वेशा ॥
अक्षर गति कोइ पार न पावे । प्रभु पूरण सब माहँ रहावे ॥
जो सुमिरै प्रभु प्रेम लगावे । ताकह काल कबहुँ नहिं पावे ॥
ताको अवागमन नशाई । ना कहुँ आवे ना कहुँ जाई ॥
अर्जुन यह पुरुषोत्तम योगा । अध्याय पंचदश नाम संयोगा ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर धर्मदास सुजाना । ब्रह्मज्ञान यह कृष्ण बखाना ॥
ब्रह्मज्ञान ऐसा है सोई । उग्र ज्ञान जानै नहिं कोई ॥
जिन जाना तिन ही पहिचाना । जैसे गूँगे सपना जाना ॥
गूंगा शैन जो गूंगा जानी । अभिअन्तर सो ले पहिचानी ॥
मैं तोहि प्रगटे कहौं बखानी । गुप्त शैन कोइ गूंगे जानी ॥
अगम अपार शब्द निर्धारा । बूझै आदि अन्त सुख सारा ॥
नहिं बोली भाषा महँ आवै । नहीं रूप कछु वरणि सुनावे ॥
हाथ न पांव सुर्ति नहिं जाके । कहो कैसे कोउ पावै ताके ॥
दृष्टि अदृष्टि न देखन आवै । सतगुरु अवर न वरण लखावै ॥

छन्द–वरण अवरण भाव बूझो क्षर अक्षरको भेद जो ।
क्षर विनशित अक्षर सुस्थित अथ कहे यह भेद जो ॥
अक्षर माहिं नि दरशय गुरू भेद लखाइया ।
कोटि वेद पुराण वांचे सतगुरु भेद लखाइया ॥

सोरठा–अक्षर भेद है सार बहु विधि कहो पुकारिके ।
बूझै बूझनिहार, आदि पुरुष सुख शब्द है ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे पुरुषोत्तमयोग व्याख्यानो नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

सुनो संत तुम कुंतिकुमारा । पुरुषोत्तम मैं कहेउं विचारा ॥
अब दुइ योग मैं कहेउँ बखानी । दैव आसुरी ताको मानी ॥
दैव योग जो साधै प्राणी । दैवकी शरण लेइ पहिचानी ॥
ताको लक्षण कहि समुझावौं । भिन्न भाव करि बरणि सुनावौं॥
दैव योग संपदा को वर्णक । ताको पूजि होइ जो शर्णक ॥
प्रथम अभय निर्भय होइ रहई । काहूकी कछु शंक न करइ ॥
सत राखै अभ्यंतर अपने । झूठ न व्यापै कबहीं सपने ॥
ज्ञान योगते मन थिर राखे । दम शम कै काया में राखै ॥
दान पुण्य मैं चित अभिलाषै । योग युक्ति मैं बहु विधि भाषै ॥
नित्त नेम पढै गुरु मंत्रा । ताते काया होइ पवित्रा ॥
अरि औ मित्र एक सम जानै । इच्छा काहूकी मन नहिं आनै॥
होइ अक्रोध जो त्यागे हठको । शीतल रूप जो साधे घटको ॥
चुगली चाली दूरि बहावै । दया भाव चित माहिं समावै॥
लव लिप्सन होई जिय जाके । कोमल वचन रहै सुख ताके ॥
लोक लाज तजि साधु सुभावै । चपल बुद्धि कह दूरि बहावै ॥
तेज तजै सत्क्रियाकी आसा । क्षमावंत होइ रहेउ उदासा ॥
धीरज मनमें सदा समाई । शुचि संयम करि युक्ति रहाई॥
होइ अद्रोह द्रोह नहिं आवै । सदा देव संपद मन भावे ॥
मन इच्छा पूजे सब कामा । देव कर्म ताकर है नामा ॥

आसुरी संपदाको वर्णन

अब आसुरी को करौं बखाना । हृदयमें नहीं ज्ञान समाना ॥
दंभ करी करि लोक देखावै । अंतर्गत नहिं ब्रह्म समावै ॥
द्रव्य देखि फूलैं अधिकारी ।निशिदिनलवलिप्साचितधारी॥

करि अभिमान आपको जानै । और न दूसर चितमें आनै ॥
क्रोध सदा अभि अन्तर राखै । बहु कठोर कोमल नहिं भाखै॥
रहै अज्ञान ज्ञान नहिं भावे । जहां ज्ञान तहँ रोष उठावे ॥
प्रवृत्ति निवृत्ति पुण्य औ पापा । कर्म धर्म करि थापैं आपा ॥
शौच क्रिया मानैं नहिं आवे । निराचारमें मन चित लावे ॥
जक्तके अस्त सदा सुख मानै । जग कर्ताको कबहि न मानै ॥
यह व्यवहार आसुरी आही । कबहु न सुमिरै प्रभु जो ताही॥
ऐसे जीव सदा दुख पावै । नरक वास में जाइ समावै ॥
नर्क द्वार तीनि हैं भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥

तीन द्वार नर्कको वर्णन

प्रथम द्वार जो काम बनावा । काम द्वारले चित्त लगावा ॥
कामविषय निशिदिन लपटाना । नर्क वासमें जाइ समाना ॥
दूसर द्वार क्रोध कहावै । जाके क्रोध सदा चित भावे ॥
ताते नर्कवास में जाई । उपजत विनशत बहु दुख पाई॥
तीसर द्वार लोभ है भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥
लोभ लागि जो जन्म गवाँवे । वासा नर्क सदा सो पावे ॥
नर्क द्वार यह तीन बखाना । मूरख इनमें रहै समाना ॥
दैव आसुरी संपद नामा ।अध्याय षोडशो कहेउँ बखाना॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनु संत विवेकी । दोउ संपदा कहेउँ विशेखी ॥
पाप पुण्य हैं दोऊ बेरी । एक लोहे एक कंचन केरी ॥
बेरी पाय एक दुख होई । कंचन ते सुख अधिक न सोई॥
यह संसार फंद यम केरा । कैसे छूटै यम उर झेरा ॥
कर्म करै कर्ता न कहावे । पाप पुण्य शिर भार लेयावे ॥
सत संतोष हियेमें धरई । सहज सरूपी भवजल तरई ॥

साधु संत सेवा चित राखैं । सद्‌गुरु शब्द अमीरस चाखै॥
चाखत अमी अमर सो होई ।अजर अमर सत्यलोक समोई॥

छन्द—धर्मदास तुम सुनो चित दै कर्म न लागै दासको ।
पाप पुण्य बंधा रहै जो छुटन चाहै फंद सो ॥
सुवा नलिनी पकरि अरझो आपनी मति मंद सो ।

सोरठा—सदा अहेरी काल, पाप पुण्य फंदा रचो ।
सद्‌गुरु दीन दयाल, कर्म काटि मुक्ता करो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे दैवा-
सुरसंपदाऽऽख्यानो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

अर्जुन कहेउ सुनौ यदुराई । कछु मोरे जिय संशय आई ॥
सो अब प्रगट कहो भगवाना । आगे सूक्ष्म सुना मैं काना ॥
शास्त्र धर्म छाडि जिन दीन्हा । तिनकी गति तुम कैसे कीन्हा॥
रूप सरूप कौन है ताही । सत रज तमगुण ये को आही॥

श्रीभगवानुवाच

कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमारा । भली बात कर कीन्ह विचारा॥
जग रचना शास्त्र मत आही । तेहि मारग सब लागे जाही ॥
शास्त्र न वेद पुराण न छोडे । सो तौ नर्कवास में बोडे ॥
जब लगि ब्रह्मज्ञान नहिं आवे । तब लगि शास्त्र धर्म मन लावे॥
जब आवे याको ब्रह्मज्ञाना । शास्तर वेद किताब हेराना ॥
ता कहं कर्म न लागै भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥
जब आतम परमातम जानै । कर्म धर्मते भे निरवानै ॥

मोक्ष सरूपी आपे होई । ना फिर जन्मे मरै न सोई ॥
ऐसी भांति जो साधु रहाई । ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई ॥
अब तीनो गुण वर्नि सुनावौं । सकल कामना तोर मिटावौं ॥

त्रिगुणको वर्णन

सत रज तमगुण तीनि बखाना । तीनने तीनि २ औ जाना ॥
पूजा तीनि अब कहौं बखानी । पूजहिं सुर नर मुनि औ ज्ञानी ॥
सात्त्विकी देवा पूजैं भाई । राजस पूजैं यक्ष बनाई ॥
तामस भूत प्रेत पूजावहिं । नर्कवास ले सो मुक्तावहिं ॥

त्रिगुण अहारको वर्णन

अहार तीन अब सुनले भाई । सबमें सत रज तम जो आई ॥
खीर खांड घृत करै अहारा । यह लक्षण सतगुण व्यवहारा ॥
साधु सरूपी सदा सु चाला । सन्तनको बहुविधि प्रतिपाला ॥
करुवा खट्टा लोनु तीक्षण । ये अहार राजस लक्षण ॥
दुख सुख ताहि जो व्यापे भाई । नाना व्यञ्जन करै बनाई ॥
तमगुणके आहार बखाना । भई रसोई पहर सेराना ॥
भोजन करि २ लोक सिधावै । स्वाद अनेक रहै ना पावै ॥
होइ उच्छिष्ट अन्न अब भाई । तामसि तामस करि २ खाई ॥

त्रिगुण यज्ञ वर्णन

द्रव्य यज्ञ प्रथम है भाई । बिन फल इच्छा यज्ञ कराई ॥
प्रभुके सुमिरन रहै समाई । ताकी बुद्धि सात्त्विकी भाई ॥
राजस यज्ञ करै फल चाहै । दंभ करै यश कृत्रिम समाहै ॥
यज्ञ विधि निह तामसी होई । अन्न चूने बिनु करै रसोई ॥
जैसे तैसे यज्ञ करै पूरा । दक्षिना देत बहुत के घूरा ॥
खरच करै औ कल्पे भाई । ताते नर्क बास चलि जाई ॥

त्रिगुण तपस्या वर्णन

तनसो देवता पूजा लावै। गुरु और ज्ञानी पूज पुजावै ॥
शुचि संयम जो कोमल रहई। ताकर काल पला नहिं गहई ॥
ब्रह्मचर्य पुत्रि आनि जेवावै। रहै अनिच्छा सत्य न खोवै ॥
यह तन पूजा करै सुजाना। गुरु गोविन्द को धारै ध्याना॥
सत्त्विक मन तप कहौं बुझाई। इन्द्री सबै हाथ जेहि आई ॥
प्रथमैं प्रसन्न जो राखै। मौन रहै अमृत रस चाखै ॥
आतम निग्रह करे सुजाना। अन्तर्भाव सुधा निर्वाना ॥
तपस्या मनकी कही सुनाया। सुधा सरूपी सतगुण भाया ॥

सात्त्विकी वचन तपस्या वर्णन

वचन तपस्या करों बखाना। यह तप मुखते भया प्रवीना ॥
अभय वाक्य ताकूं भइ नाहीं। सत्ति सरोत्तर जस मुख माहीं ॥
प्रिय हित साधु वचन सो कहही। पाठ करी करि जन्म सुधरही ॥
एते वचन तपस्या होई। मुखते करे करावे सोई ॥
तीनि तपस्या सतगुण भावा। सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥
रजस तपस्या त्रै परकारा। ताकूं अब मैं करो प्रचारा ॥
तीनि तपस्या राजस भाई। तनसों तपकरि लोक देखाई ॥
मनसों कपट कबहुँ नहिं छूटै। वचन सदा मुख बोले झूटै ॥
तीनि तपस्या राजस होई। ऐसी भांति करे जो लोई ॥
तामस तप है तीन प्रकारा। शुभ अशुभ कछु नाहिं विचारा॥
हठ करि तपसो तनको गारै। मनमें क्रोध सदा जो धारै ॥
वचन कठोर बहुत सो बोलै। तामस ताप अहं लिये डोलै ॥
तीन तपस्या त्रिगुण सुभावा। सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥

त्रिगुण दानका वर्णन

तीनि प्रकार दान अब वर्नौं। उत्तम सेवा ब्रह्महि चीन्हौं ॥

अन आश्रित को देइ जो दाना । तीरथ उत्तम ठौर ठेकाना ॥
दान देइ फल चाहै नाहीं । सात्त्विक दान सो कहिये ताहीं ॥

राजस दानका वर्णन

जत अश्रेको दान जो देई । लाहा कारण संशय लेई ॥
यह तौ राजसको व्यवहारा । दान देइ चित कल्पै भारा ॥

तामस दानका वर्णन

तामस अशुचिको देइ जो दाना । नटुवा वेश्या हित करि जाना ॥
ब्राह्मण देत क्रोध मन करई । इच्छा बहुतै फलको धरई ॥
यह लक्षण तामस कर होई । तीनि प्रकार दान है सोई ॥

तीनि नाम त्रिगुणको वर्णन

तीनि नाम वर्णों मैं त्रिगुणा । जाते सृष्टि होत है सगुना ॥
वह अंतुतु है मति सोई । तीनिउ नाम एक सम होई ॥
निज मंत्रहि मैं भाषि सुनाया । ताको मर्म न काहू पाया ॥
पाक रसोइ छूति जो होई । वो अंततू सति है सोई ॥
पातक छूति रहै नहिं कोई । यह तौ मंत्र पवित्र कराई ॥
पावै प्रसाद जो सकल जहाना । सुमिरै पावै पद निर्वाना ॥
सब कारज सुमिरे त्रै नामा । पूरण होइ सकल विधि कामा ॥
योग सिद्धि सत्रह अध्याई । सो तौ पूरण वाणि सुनाई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनु धर्मनिराया । तीनिउ गुण वरतै संसारा ॥
साधू कहँ कोइ कर्म न लागै । तन मनते इच्छा कह त्यागै ॥
कर्म करै कर्ता न कहावै । मन सो कुमारग जान न पावै ॥
मारग अगम साधुकर होई । कृष्ण अपने मुख भाषा सोई ॥
वेद पुराण पार नहिं पावै । जहँवा साधू ध्यान लगावै ॥
वेद कितेब दोउ है फन्दा । यहि ते लागि रहै जग धन्धा ॥

ज्ञानहि कहि २ कर्म दृढावे । यज्ञ दान फिरि जन्म धरावे ॥
हम तो कहो अगोचर ज्ञाना । जाते होइ हंस निर्वाना ॥

छन्द—अगम अगोचर भेद सद्गुरु साधु रहै समाइ के ।
हंस होइ सत्यलोक आवे दरस सद्गुरु पाइ के ॥
पूरा गुरु जो पावई तो मिटै यम फंद को ।
हंसको मुक्ताइ यमसो मिलै अच्युतानंदको ॥

सोरठा—ऐसा शब्द अपार, वार पार बिच भेद को ।
सत्य शब्द निर्धार, सद्गुरु सोइ बताइया ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे योग-
सिद्धव्याख्यानो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

अर्जुन कहैं सुनो यदुनाथा । जो पूछौं सो करो सनाथा ॥
सन्यास कर्म काहे सो कहिये । त्याग रूप सब वर्णन चहिये ॥

संन्यासको वर्णन

सुनु महाबाहु मैं कहौं बखाना । कर्म नाश संन्यास समाना ॥
कर्म धर्मको मारग छांडै । ब्रह्म ध्यान अभ्यन्तर मांडै ॥
सब परपंचते न्यारा होई । कर्म संन्यास कहावे सोई ॥

त्यागरूप वर्णन

त्याग रूप है अगम अलेखा । कर्म करै नहिं आपु विशेखा ॥
निशि दिन कर्म धर्म जो होई । रहै अलिप्त लिप्त नहिं होई ॥
अपनेको कर्ता नहिं जानै । फल औ फल मनहि नहिं आनै ॥
ताकहँ त्याग कहीये भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥

संन्यास त्रिप्रकार वर्णन

संन्यास त्याग तीनि गति होई । अनिष्ट इष्ट मिश्र गति सोई ॥
अनिष्ट नर्ककी योनी भुक्ते । देव योनिको इष्ट संयुक्ते ॥
मिश्र मानुषकी देह जो पावै । तीनों गति गीता बतलावै ॥

त्रिप्रकार क्रिया वर्णन

कहौं क्रिया तीनिहु समुझाई । ज्ञान कर्म कर्ता जो आई ॥

ज्ञान क्रिया त्रिप्रकार

प्रथमैं ज्ञान सुनो चितलाई । ताकर लक्षण तीनि बताई ॥
जबही ज्ञान हृदयमें आवै । सर्व त्यागि प्रभुको लवलावै ॥
सर्व व्यापि जो ब्रह्महि जानै । सात्त्विक लक्षण ज्ञान बखानै ॥
राजस लक्षण जानै प्रभु न्यारा। न्यारा २ ब्रह्म विचारा ॥
तामस लक्षण एक ठौरहि जानै। मूरति प्रतिमा पूजा ठानै ॥
ताहि एहै ठाकुर है येही । परम पुरुषते नाहिं सनेही ॥
जेहि देवा को जो कोई ध्यावै । तेहि देवहि ठाकुर ठहरावै ॥
यह लक्षण तम गुण व्यवहारा । तामें वास है नरक दुवारा ॥

कर्म क्रिया त्रिप्रकार वर्णन

दोसर कर्म लक्षण है तीनि । जानै कोउ साधू परवीनी ॥
कर्म करै फल चहै न ताको । पुत्र कलत्र असंग सदाको ॥
राग द्वेष जाके नहिं आवै । एतो सत्त्वगुण कर्म सुभावै ॥
राजस कर्म सुनावौं मीता । करि २ कर्म कामना प्रीता ॥
कर्म अधिकार आपु ना होई । फल वांछै मन राजस सोई ॥
तामस कर्म सुनो तुम भाई । तप स्नान औ जप लर जाई ॥
हठ करि कर्म करै बहु भाई ।दुख सुख अह निशि लहै सदाई॥
ता प्रकार क्रोधहु बहु होई । तामस नर्क वास है सोई ॥

कर्ता लक्षण त्रै प्रकार

तीसर कर्ता रूप बखानौं । कारण करण करै सोइ जानौं ॥

सात्त्विक कर्ता जो कछु करई । आपु मेटि प्रभुको चित धरई ॥
आपुको कर्ता नहिं जानै । कर्ता पूरण पुरुष बखाने ॥
ऐसी रहनि रहै जो दासा । नर्क स्वर्गकी ताहि न आसा ॥
सो सत्त्व गुण लक्षण है भाई । जाते कहिये साधु सुभाई ॥
राजस कर्ता आपुको जानै । दारा हित सुत आपको मानै ॥
बहुतै हर्ष शोक तेहि भावे । थोर करै बहुतै फल धावै ॥
तामस कर्ता लक्षण भाई । आलस निद्रा बहुत रहाई ॥
आपु अयोग चाहै पुरुषारथ । ह्वै अधीन नहिं चाहै स्वारथ ॥
कारज होइ गये अब जाको । दिन औ राति बतावै ताको ॥
भोर होइ सो दिवस बतावै । तामसकर यह सदा सुभावै ॥

त्रिप्रकार बुद्धिको वर्णन

तीनि प्रकार बुद्धि है भाई । प्रथमैं सुमिरन मैं ठहराई ॥
निवृत्ति प्रवृत्ति जो मारग जानै । करै विचार धर्म पहिचानै ॥
काज अकाज न बंध न मोक्षण । सो साध्वी है सात्त्विक लक्षण॥
दुसरी बुद्धि तो धर्म अधर्मा । काज अकाज जाने सब पर्मा॥
राजस बुद्धि लक्षण यह भाई । मनमें सदा विचार कराई ॥
तामसबुद्धि अब सुनहु सुजाना। क्रोध लिये मन विषय सुजाना॥
धर्महि सो अधरम करि जानै । करै अधर्म धर्म पहिचानै ॥
ता अधरम कह धर्म जो कहई । सदा तामसी बहु दुख सहई ॥

त्रिप्रकार धीरज

सात्त्विक धीरज वरणि सुनाऊं । संशय तोर जो सकल मिटाऊं॥
पांच तत्त्व मन संयम साधै । सकल कामना यह अवराधै ॥
इंद्री सकल एक सम कराई । सात्त्विक ऐसो धीर धराई ॥
राजस धीरज है परसंगा । पारस लागै धर्म उमंगा ॥
कर्म करै संगति ते सोई । औ फल चाहै राजस होई ॥

धीरज तामस सपना देखै। भय अभय सकलौ में पेखै ॥
शोक विषाद बसे मन माहीं। तामस धीरज लक्षण आहीं ॥

त्रिप्रकार सुख वर्णन

अब सुख लक्षण कहौं जो सोई। तीनि भांति सुख व्यापक होई॥
प्रथमहि सात्त्विक सुख सुनु भाई। सुख कहँ विषके जानै सोई ॥
सुखसो कबही हेत न जानै। विष समान ताकह पहिचानै ॥
अंत समय विषसो सुख होई। सात्त्विक लक्षण बरनौं सोई ॥
दूसर इन्द्री सुख संयोगा। परनारी सों करै जो भोगा ॥
यही प्रकार महा सुख करई। सो सुखी अंत जो विषसो होई॥
राजस सुख लक्षण यह भाई। दुख बहुतक व्यापे जाई ॥
तीसर तामस सुखहि बखानो। विवेक विचार हृदय नहिं अनो॥
आलस निद्रा बहु सुख मानै। सपने कबहीं गम न जानै ॥
तामस सुख यह कहिये भाई। जाते नर्क सदा भमांई ॥

वर्णका वर्णन

चारि वर्ण अब वर्णौं भाई। तिनके ये गुण प्रगट सुनाई ॥
ब्राह्मण सत्त्वगुण रूप विराजे। कर्म स्वभाव ताहि तन छाजे ॥
शम दम तव शूच्या सो करई। ज्ञान विज्ञान सत्य मन धरई ॥
स्थिर मनमें कठोर तन होई। ब्राह्मण कर्म स्वभाव जो सोई॥
क्षत्रिय सत्त्वरज दुइ गुण धारी। शूरवीर दाता अधिकारी ॥
तीक्ष्ण धीरज बुद्धि है जागी। युद्ध करत कबहूँ नहिं भागी ॥
वैश्य राजसी कहौं बुझाई। कृषी गऊ रक्षक है भाई ॥
वणिज व्योहार बहुत संसारा। यह तौ लक्षण वणिजिव्यवहारा॥
शूद्र वर्ण सेवकाई करई। सेवक होइ भवसागर तरई ॥
सेवा फल है अगम अपारा। आवागमनते होई निनारा ॥
जो अभिमान तौ जन्म गवांवे। सेवा विना नहीं बनि आवे ॥

चारि वर्णको कर्म सुनाई । अर्जुन तोहि कहौं समुझाई ॥
जो कोइ अपने धर्महि चाहै । प्रीति भाव सदा चित लाहै ॥
भला जानि पर धर्म न लेई । आपन धर्म छांड़ि नहिं देई ॥
निज कुल छांडि ऊंच मन धरई। सो पुनि भवसागरमें परई ॥
कुलके कर्म सदा सुख पावै । नवनिधि लक्ष्मी ता घर आवै॥
ताते तोहि कहौं समुझाई । युद्ध करो तुम अर्जुन भाई ॥
कहा हमार चित्त नहिं धरिहौ । हमरे कहे युद्ध नहिं करिहौ ॥
तौ अब कर्म रेख उठि धावै । तोसो युद्ध अनेक करावै ॥
तब तुम करो युद्ध संग्रामा । करो मारि क्षत्रियके कामा ॥
तब तोहि रोख अधिक होइ भाई। हमरी प्रीति भंग होइ जाई ॥
जो नीका सो करो सुजाना । ज्ञान अज्ञान सब करेउँ बखाना॥
यह गीता मैं कहि जो सुनावा । पै कछु भेद और समुझावा ॥
गीता मता गुप्त है भाई । चारिहु जनको कहि समुझाई॥

चारि अधर्मको वर्णन

भक्ती हीना तपसो हीना । सेवा बिना नहीं आधीना ॥
निद्रा रूप सदासों रहई । तासो गीता कबहु न कहई ॥
तासों संगति कबहु न कीजे । इच्छा प्रभुकी गहिकै लीजै ॥
गुप्त ज्ञान है कथा पियारी । तहां कहो जहँ होइ हितकारी ॥
भक्त साधु जहँ हरि यश गावैं । गीता कथा तहां अर्थावैं ॥
सुनत सुनावत बहु सुख होई । कोटिक अश्वमेध फल होई ॥
अर्जुन गीता तुम्हैं सुनावौं । ज्ञान कथा कहि बहु समुझावौं ॥
मोह तुम्हार छूटि की नाहीं । सो तुम बोलो हमरे पाहीं ॥
जो कछु तुम्हरे मनमें होई । करो जाइ तुम अर्जुन सोई ॥
अर्जुन सुनत दंडवत कीन्हा । विनय भांति ते बहु सुख दीन्हा॥
मोह मोरि सब दूरि पराने । वचन तुम्हार ज्ञान करि माने॥
अस्त्र लीन तब हाथ उठाई । महा कोप होइ धनुप चढाई ॥

अध्याय अठारह कहा बखानी । योग संन्यास नाम तेहि जानी॥
अर्जुन गीता भयो समापति । जो कछु कही आपुकमलापति॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुन धर्मनि हीता । तुम्हरे लिये बखानेउँ गीता ॥
तुम तो भक्त जक्तते न्यारा । आवागमनके बीज तुम्हारा ॥
अब तुम परम भक्ति चितलावो। निशिदिनसतगुरुशब्द समावो ॥
धर्मदास बिनती इठि लाई । सुनि गीता संशय उपजाई ॥
गीता कही कृष्ण केहि कारण । अर्जुन उठे कुटुम्ब संघारण ॥
ज्ञान सुने मति निर्मल होई । मित्र औ दुष्ट एक सम होई ॥
ज्ञान सुने कछु क्रोध न आवै । परम पुरुषते मन चितलावै ॥
गीता कृष्ण जो कहेउ बखाना । ज्ञान सुनाइ क्रोध मन आना ॥
क्रोधविना सो युद्ध न होई । नर्क द्वार कृष्ण कहेउ सोई ॥
क्रोध किये अज्ञान कहावै । यह सब भेद मोहि समुझावे ॥
कृष्णमता कहि प्रकट देखाऊ । ज्ञान सुने अज्ञान न आऊ ॥

कबीर उवाच

सुनि धर्मनि यह भेद है बंका । जानत नहीं राउ औ रंका ॥
कृष्ण ठगौरी जक्त लगाई । ताते भेद न बूझो भाई ॥
यह प्रपंच कृष्णकर आही । तीनिहु लोक सदा भमाई ॥
चाहै छल बल युद्ध करावै । अर्जुन कैसे धनुष उठावै ॥
महामोह तेहि रहा समाई । और भांति नहिं मानै भाई ॥
छलहि मता किन्हीं आपै सोई । ज्ञान सुनाइ मोह कह खोई ॥
यह तो ज्ञान कहो परमारथ । जेहिते युद्ध होइ पुनि स्वारथ ॥
जैसी इच्छा करै जो ज्ञाना । फल पावै सेवा अनुमाना ॥
नहिं अर्जुन मनपुरुष मिलाषा । कैसे कर्म होइ निष्पापा ॥
पुरुष मिलाय न कृष्ण सुनावै । कैसे अगम अगोचर पावै ॥

पावे अगम कृष्ण को माने । तीनि लोकको भूपति जाने ॥
ताते ज्ञान कहि कर्म दृढ़ावे । फिरि २ भवसागर भटकावे ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहँ सुनो गोसांई । मारग साधु जो अगम सुनाई ॥
कर्म धर्म कह पाछे मेले । ज्ञान रूप अभ्यन्तर खेले ॥
परम अनंद पुरुपको दर्शै । सेवक स्वामी चरण न पर्शै ॥
गीता कहै औ कर्म दृढावे । केहि कारण इनको भटकावे ॥
कौन ज्ञान जो भर्म बतावे । फिरि २ भवसागर भटकावे ॥

कवीर उवाच

धर्मदास मैं कहौं बुझाई । मूरुख लोग नहीं पतिआई ॥
तीनिउ लोक पुरुषपहि दीन्हा । राजै काज करावन कीन्हा ॥
जो चाहै सो रचे बनावे । तीनि लोकते जान न पावे ॥
ज्ञानोपदेश देह जो भाई । तौ यह सृष्टि वैराग उठाई ॥
तब यह रचना सबही थाके । इनको कौन गोसांइया थापे ॥
तेहि कारण इन कर्म दृढाई । अरुझी सृष्टि सकल भर्माई ॥
सतगुरु शब्द सुना कहँ दरसे । जाते प्रभु पूरण कहँ परसे ॥
गीता कहि जो कृष्ण सुनाई । तबहु न अंधा मोहि पतिआई॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तव बलिहारी ॥
जब कर अर्जुन धनुप संभारा । कहा कीन्ह सो कहौ विचारा ॥

कवीर उवाच

सुनो संत धर्मनि निर्वाना । अंत युद्ध सब करों बखाना ॥
बहुते भांति युद्ध तिन कीन्हा । युद्ध जीति राजहि मन दीन्हा ॥
राज युधिष्ठिर मनहि विचारा । बहुतै भांति बंधु हम मारा ॥
कस प्रायश्चित्त मोक्षण होई । कहो व्यास हमसों तुम सोई ॥

व्यास कृष्ण मिलि मत अर्थाई । कुल हत्या कैसे मुक्ताई ॥
करो विचार अश्वमेध जो करई । यज्ञ करत हत्या परिहरई ॥
सब मिलि ऐसा मता विचारा । बहुत भांति यज्ञ करौ संभारा ॥
ताते पाप मोक्ष होइ भाई । यज्ञ करनको मता दृढाई ॥
करौ यज्ञ मन भयो विश्रामा । राज मनोरथ पूरण कामा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनवै कर जोरी । संशय उपजी मेटेउ मोरी ॥
पांडव कृष्णहि बहुत पियारे । किया यज्ञ तब कहां सिधारे ॥
कैसे गति मति उन पुनि पाई । कृष्ण सरीखो रहै समाई ॥

कबीर उवाच

धर्मदास तुम चतुर सुजाना । पूछेउ सो अब करौं बखाना ॥
कृष्ण देह जब छांडन लागे । तिनसों कह्यो ताहिते आगे ॥
अवधि हमारि आय नियराई । तुम हूँ गरो हेवारे जाई ॥
अर्जुन कहहु सुनौ गोसांई । कारण कवन हेवारे जाई ॥
कृष्ण कही तब ऐसी बाता । तुम तो बंधु कीन्ह है घाता ॥
पातक बहुत जो तुमसे भयऊ । गरै हेवारे ताते कहेऊ ॥
कहैं अर्जुन सुनु पुरुष पुराना । मारण बंधु न हम चित आना ॥
गीता ज्ञान मोहि समुझाया । युद्ध करनको अस्त्र बँधाया ॥
तुमको पातक नाहीं लागे । कर्ता करै आपु अनुरागे ॥
तुम्हरे कहे युद्ध हम कीन्हा । पातक हम शिर काहे दीन्हा ॥
पुनि तुम कह अश्वमेधहि करहू । सब पातक पाछिल परिहरहू ॥
तापर हम अश्वमेध जो कीन्हा । तबहू पातक हम शिर दीन्हा ॥
कहैं कृष्ण अर्जुन सुनु भाई । कर्म रेख मेटो नहिं जाई ॥
कर्म रेखते सब जग आवै । बार बार दुख सुख भुक्तावै ॥
चारिउ युग फिरि याहै आई । हम तुम ऐसे संग रहाई ॥

तातें कछु संदेह न कीजै। वेगि हेवारे पयाना दीजै॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास पूछे सुनु भाई। आगे कैसे भई गुसाँई॥

कबीर उवाच

कहै कबीर यह सर्ग बखाना। तुमसों वर्णन कहौं निदाना॥
पांडव जाइ हेवारे गलिया। देह समेत युधिष्ठिर चलिया॥
करेउ पुण्य जप तप औदाना। ताते पहुँचे स्वर्ग स्थाना॥
और पांडवा नर्क समाने। हत्याके फल नर्क रहाने॥
तहां जाइ कोइ बंधु न देखा। पूछेउ सबै देव मुनि शेषा॥
कहां हमारे चारिउ भाई। केहि कारण मोहि इहां ले आई॥
इहां कहां वे बसवे पाई। जाके खोजो चारिउ भाई॥
तुम राजा हौ धर्म अवतारा। ताते पहुंचे स्वर्ग दुआरा॥
बंधु तुम्हार पातक बड़ कीन्हा। ताते बास नर्कमें दीन्हा॥

युधिष्ठिर उवाच

की उनको इहवां लै आवहु। की हमको उहवां लै जावहु॥
जब यह विष्णु सुनो मन जानी। इनकह पुण्य बहुत पहिचानी॥
उपजो मोह बंधु हित भाई। जाइ लै आवहु बंधु देखाई॥
नर्क कुण्ड तेहि जाइ देखाई। बूड़ देखे चारिउ भाई॥
और सकल परिवार घनेरा। काहू सुधि नहिं काहू केरा॥
चारिउ भाई रोवन लागे। कर्म हीन हम बड़े अभागे॥
राइ युधिष्ठिर मोह जनाऊ। मोह नर्कं कुंड ले नाऊ॥
दूत विष्णु सों बहुरि जनाई। आपु युधिष्ठिर नर्कमें जाई॥
जो कछु आज्ञा होइ गोसांई। आज्ञा मानि करौ सोइ जाई॥
कहैं विष्णु यह धर्म सरूपा। करो युधिष्ठिर पुण्य अनूपा॥
जो कबहीं वे नर्क मों जैहैं। अघ जीवन सब लै उतरै हैं॥

क्षण अंगुरी ले नर्कमो डारो । एते चारिउ बन्धु उबारो ॥
फिर ले आवहु कुंती जहवां । स्वर्ग स्थान वैकुंठ हैं जहवां ॥
ऐसी भांति करो तहँ जाई । क्षणहि अंगुरी नर्क बुझाई ॥
ता कहँ लागि बंधु सब आये । राइ अनंद बहुत सुख पाये ॥
गये युधिष्ठिर धर्म स्थाना । धर्म पुत्र रहे धर्म ठेकाना ॥
भीम जाइके पवन समाई । पवन पुत्र जेहि कहिये भाई ॥
अर्जुन इन्द्र पुत्र जो रहिया । इंद्रलोकमें वासा करिया ॥
सहदेव नकुल जो दूनो भाई । अश्विनि कुमार पुत्र हितलाई॥
ऐसे स्वर्ग लोक जो किय बासा। पुण्य घटे भवसागर आसा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहैं सुनो गोसाँई । पांडव मित्र विष्णुके आहीं ॥
गीता भागवत वेद पुकारा । दर्शन प्रभु जिन नेक निहारा ॥
ताकर आवागमन न होई । सुर नर मुनि सब भाषै सोई ॥
साधु संत मिले सब गुणगावैं । जो कोइ हरिके दर्शन पावैं ॥
ताकी मोक्ष मुक्ति होइ भाई । जरा मरणको बीज नसाई ॥
साक्षाद्दर्शन कृष्णको लहिया । और विराट देखायो तहिया ॥
मोक्ष मुक्ति उन काहे न पाई । साहेब कहो मोहि समुझाई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । पुरुष एक आदि रहि वासा ॥
तिन्ह पुनि श्वासा कीन्ह प्रकाशा। धर्म धीर एक अंश नेवासा ॥
तिनते उपजेउ ॐॐकारा । माया प्रकट भई विस्तारा ॥
ब्रह्मा विष्णु उपजे तब भाई । जिन यह रची सृष्टि दुनिआई॥
इनकहं तीनलोक जो दीन्हा । राज रूप रचना तिन कीन्हा ॥
सकल बीज जो पुरुषते आया । जाते सकल सृष्टि निर्माया ॥
कामिनि जबै धर्म निज कीन्हा। कर्मरेख जो भया अधीना ॥
दश अवतार कर्म सो भयऊ । कारण कर्म इन्हे निर्मयऊ ॥

कर्मरेख रघुपति दुख पायउ । सीता शोक बहु पछितायउ ॥
नरसिंह शूकर रूप धरावा । मच्छ कच्छ सर्व कर्म बनावा॥
वामन होइ बलि छलिया जाई । परशुराम होइ युद्ध कराई ॥
कर्मरेख यदुपति दुख पावा । बन २ धेनु चरावन धावा ॥
गोपी षोड़श सहस्र अनंदा । तिन सँग नाचे बाल मुकुन्दा ॥
कर्मरेख भे बोध शरीरा । आवा गमन मिटो नहीं पीरा॥
नि:कलंक है दश अवतारा । कर्मरेख भय प्रलय संघारा ॥
इनते अधिक और को आही । कर्मरेखते मुक्तत जाही ॥
अंकुरी कोइ जीव रहे भाई । सो अंकुर पुरुष ते आई ॥
तिन कह पुरुष जो चितवन कीन्हा। कैसे लोक होइ लव लीना ॥
सतगुरु यहि कारण उपजावा । हंसन कारण मोहिं पठावा ॥
मूर्खा शब्द नहिं मानै भाई । अंकुरी परवाना पाई ॥
कर्मरेख पांडव दुख पावा । कर्मरेख छूटै न छुटावा ॥
इन कहँ सब जग करता जाने । ताते आवा गमन नसाने ॥
सतगुरु मिले सत्य शब्द लखावै। कर्मरेख बंधन मुक्तावै ॥

छंद—धर्मदास तुम बूझि देखौ छल मता भगवानहो ।
मूर्ख जन उपदेश कारण गीता कियो बखान हो ॥
पांच पांडव परम मंत्री तिनको गति कैसी दई ।
नर्क स्वर्गमें वास करि २ जन्म फिरि २ तिन लई ॥

सोरठा—बूझो संत सुजान, गीता कथा जो सब सुनी ।
चेतनि हंस अमानि, और सकल भरमें दुनी ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
त्यागसंन्यासव्याख्यानं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ उपसंहार

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनवै कर जोरी । तुम दयालु बंदी मोरि छोरी ॥
गीता जो तुम कही बखानी । पांडवकी गति सब मैं जानी ॥
ऐसे सब जीव भरमाई । कैसेहु भांति मुक्ति नहिं थाई ॥
सोइ ज्ञान मोहिकहि समुझावो । जरा मरण को बीज नसावो ॥

कबीर उवाच

सुनु धर्मदास हंस पतिराया । हंसन कारण पुरुष की दाया ॥
अंकूरी जिव आपु बोलाया । ताते हम कह लेन पठाया ॥
सत्य शब्द अब करौ प्रकाशा । पावै हंसा लोक निवासा ॥
उग्र ज्ञान है मता निनारा । सुक्ष्म वेद जो पुरुष संचारा ॥
पुरुष दया आनेउ संसारा । जेहिते पावै मुक्ति दुवारा ॥
अध्याय उनइस कहौं ये भाई । सुर नर मुनि जानै नहिं ताई ॥
मुक्त होइ सत्यलोकहि जावै । आदि पुरुषके दर्शन पावै ॥
प्रथमै रहनी हंस बखानो । निशि दिन रहै नाम लपटानो ॥
तीनो गुण है विषके मूला । ताते दुख सुख भये स्थूला ॥
दुइ गुण कबहीं चित नहिं धारै । रज तमको परपंच विसारै ॥
वासा करै सत्यके माहीं । आसा ताकी राखै नाहीं ॥
प्रकृति पचीस पंच तत्त्व रहई । तीनिउ गुण कारण यह वहई ॥
जो तीनिउ गुण वश करै आपै । पंच पचीस कोइ नहिं व्यापै ॥
तीनिउ गुणते न्यारा खेलै । मनुआ सत्य सुमिरनमें मेलै ॥
श्वास सुर्ति एक डोरी लावै । अजर अमर होइ हंस मिलावै ॥
मन पवना लै सुख मनि राखै । सोहं हंस अमीरस चाखै ॥
तहवां अनहद होइ झनकारा । बिन दीपक मंदिर उजियारा ॥
अनहद सुनै अकह गुप्त गावै । मन चित गहि २ सुरति लगावै ॥
तहवां रैन दिवस नहिं होई । पुरुष २ सो सुरति समोई ॥

ऐसी रहनी हंस रहावे । बहुरि न योनी संकट आवे ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहें सुनो गोसाईं । पुरुष नाम कहऊ समुझाई ॥
सहस्रनाम जो देव बखाना । नेति २ कह बहुरि निदाना ॥
कौन नाम को सुमिरन करई । कैसे सदा पुरुष चित धरई ॥
कैसे आवागमन मिटाई । क्षर निर अक्षर कह समुझाई ॥

कबीर उवाच

सुनु धर्मनि तुम हंस पियारे । तुम्हरो काज सकल हम सारे ॥
सुमिरन आदि मैं तुम्है सुनावौं । सकल कामना तोर मिटावौं ॥
नाम एक जो पुरुषको आही । अगम अपार पार नहिं जाही॥
वेद पुराण पार नहिं पावे । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर धावे ॥
आदि कहौं तौ को पतिआई । अंत कहौं तौ परले जाई ॥
आदि अंतमें बासा होई । निर अक्षर पावे जन सोई ॥
अक्षर कह सब जक्त बखानै । निरअक्षरको मर्म न जानै ॥
कहो न जाई लिखो ना जाई । बिन सद्गुरु कोउ नाहीं पाई ॥
सद्गुरु मिलै तो अगम लखावे । हंस अमी पीवत घर आवे ॥
अंकुरी जीव लहे निर्बाना । पावत हंस लोक पहिचाना ॥
सुर्तिवंत पावे निज वीरा । संग रहौं मैं दास कबीरा ॥
जो कोई हंस प्रवाना लेई । अग्र नाम सद्गुरु कहि देई ॥
बिन सद्गुरु कोइ नाम न पावे । पूरा गुरू अकह समुझावै ॥
अकह नाम वह कहा न जाई । अकह कहि कहि गुरु समुझाई ॥
समुझत लोक परे पुनि चीन्हा । जाते लोक होइ लवलीना ॥
हरदम सुमिरै चित्त लगाई । लोक दीपमें जाइ समाई ॥
अजर अमर होइ लोक सिधावे । चौरासी बंधन मुक्तावै ॥
आवागमन ताहि नहिं भाई । जरा मरणका बीज नसाई ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास भये बहुत अधीना । सद्‌गुरु पूरा तुम कहँ चीन्हा ॥
तुम्हरी दया नाम हम पावा । बन्दी छोड हंस मुक्तावा ॥
करहु दया अब अंतर्य्यामी । लोक दीपको वरण बखानी ॥
जहवां सत्य पुरुष रह जोई । हंसा तहवाँ दर्शन होई ॥
पुरुष शोभा वरणि सुनावो । दया करो अब भेद लखावो ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा भेद नहीं परकाशा ॥
यह तो भेद अगम है भाई । वेद कितेब कहूँ नहिं पाई ॥
शेष महेश न कोई जाने । ब्रह्मा खोजत ताहि भुलाने ॥
विष्णु सदा मन सुमरिन करई । पै काहु नहिं परकट करई ॥
ज्ञान कहै तब पुरुष बतावै । सुनि पुनि आपा लै ठहरावै ॥
यह जग मूरख महा अचेता । परम पुरुषते नाहिन हेता ॥
हेत बिहूना जो नर आही । यह तो भेद कही नहिं ताही ॥
सुरतिवंत हंसा जो होई । तासे भेद न राखेहु गोई ॥
उग्रज्ञान यह भेद अपारा । तुमसे कहा आज हम सारा ॥
सूक्षम वेद भेद जो पावै । अजर अमर होइ लोकसिधावै ॥
लोक दीप औ प्रकट बखानो । धर्मनि सुरति रनिति सो ठानो ॥
तीनिलोकते भिन्न पसारा । सत्य लोक पुरुष दरबारा ॥
पुष्प दीप जहँ पुरुष स्थाना । आदि पुरुष जहँ बैठ अमाना ॥
सूरय सोरह जोति निवासा । ऐसा एक हँस परकाशा ॥
श्वेतै दीप श्वेत विस्तारा । श्वेतै मंदिर श्वेतै द्वारा ॥
अजर हंस है श्वेतै भाई । सदा अनंद रहै सुखछाई ॥
श्वेत छत्र सिंहासन छाजे । अनहद शब्द सदा धुनिगाजे ॥
अक्षय वृक्ष जहँ श्वेत सोहावन । श्वेत पुरुष श्वेत फल पावन ॥
श्वेतै पान श्वेत पनवेरा । श्वेत सुपारी नरिअर केरा ॥

श्वेत मिठाई कदली मेवा । अजर आरती हंसक भेवा ॥
सदा आरती हंस जो करई । अपने पुरुष चरणन रहई ॥
असंख्यकमलश्वेत तहँ रहिया । सप्त पाखुरी कमल जो रहिया ॥
पुरुष गुप्त होइ रहे समाई । सूक्षम शीश तहां दरसाई ॥
संपुट पद्म लाख है भाई । बानि उठै संपुट बिहराई ॥
उघरे संपुट दर्शन पावै । अजर हंस तहवाँ सचु पावै ॥
करत अनन्द सदा सुख भोगा । जरा मरण नहिं संशय सोगा ॥
जग मग जोति सदा उजियारा । कोटि सूर्य्यते वर्ण अपारा ॥
जहँ देखो तहँ शोभा छाजै । पूरण शोभा पुरुष विराजै ॥
कहा बखानौ पुरुष सरूपा । वरणि न जाइ वह रूप अनूपा ॥
जब लग तियापुरुष नहिं परसै । केहा बखाने सुख बिनु तरसै ॥
तिया पुरुष जब मिलिया भाई । तब सुख कछू कही न जाई ॥
जिन जाना तिनही पहिचाना । जैसे गूंगा सपना जाना ॥
कहा बखानौं वरणि न जाई । गूंगा गूंगे सैन लखाई ॥
ऐसा सतगुरु भेद लखावै । सुरतिवंत हंसा सचुपावै ॥
बारू नदी अठारह गंडा । जेते तारा है ब्रह्मंडा ॥
एते सूर्य्य जो बसै अकाशा । तऊ न पुरुषके सम परकाशा ॥
पटतर तहां पुरुषकी दीजै । सतगुरु सैन समुझिके लीजै ॥

छन्द–पुरुष शोभा कह बखानो कछु नहीं सम तुल हो ।
असंख्य सूर्य प्रकाशते वहँ जोति अगम स्थूल हो ॥
सैन करि करि नैन भरि भरि शब्द सतगुरु पर्च हो ।
पुरुष अवर न रूप जाको शोभा हंस लग दर्श हो ॥

सोरठा–उग्रगीत यह सार, गुप्त अध्याय उन्नीसमों ।
शब्द सुरति आधार, हंसा पहुँचे लोकको ॥

इति श्रीमदुग्रगीतायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

द्वाविंशतिस्तरंगः

अथ ग्रन्थज्ञानस्थितिबोधप्रारंभः

★

सद्गुरुभ्योनमः

साखी—सतगुरु आये लोकसे, धरी देह जग आय ।
जीवनबन्ध निवारिया, बन्दीछोर कहाय ॥
अन्न पानि नहिं भक्षिया, नहीं गर्भ लीन्ह अवतार ।

पांचतत्त्व गुण तीन मथी, निर्गुण रूप सम्हार ॥
ज्ञान विविधि विधि सब कह्यो, चौदह कोटि बखान ।
तासो न्यारे राखिया, मूल ज्ञान निदान ॥

चौपाई

धर्मदास वचन

धर्मदास उठि विनती कीन्हा । कृपासिंधु मोहिं दर्शन दीन्हा ॥
जामें यह मन अस्थिर होई । सोई भेद मोहि कहो विलोई ॥
विनथिर भये न होइ अनन्दा । मेटउ मोर भरमके फन्दा ॥
आदि बचन मैं कहौं विचारी । धर्मदास यह कथा निनारी ॥
यह तो कथा बहुत अवगाहा । ज्ञान गम्य नहिं पावे थाहा ॥
ग्रन्थ अनेक कही बहुबानी । यह निजगम्य सुजन जन जानी ॥
यह तो ज्ञान न काहू पाया । सो मैं तुम कहँ भाषि सुनाया ॥
स्थित ज्ञान अब कहौं बखानी । जाते छूटे यमकी खानी ॥
स्थित ज्ञान बिनु मुक्ति कहँ पावै । भरमत फिरै काल सन्तावै ॥
जोई भेद पुरुष कहि दीना । सोई ज्ञान स्थिति मैं चीना ॥

साखी—यकचित यक मन होइके, रहे शब्द लौलाय ।
कहै कबीर धर्मदास सो, तब हंसा घर जाय ॥

धर्मदास तोहि कहौं चिताई । स्थितिज्ञान सुनो चितलाई ॥
पहले करो रक्ष मन नेहा । तबहीं बाढै शब्द सनेहा ॥
जो सुने कहूँ चोर यह बैना । सुनिके करे अपरबल सैना ॥
बीरा सार बालक कहँ दीजै । सुरतिवन्त कह स्थिर कीजै ॥
स्थिति ज्ञान जो पावे कोई । जरा मरण रहित सो होई ॥
निरअक्षर वह नाम अपारा । ग्रन्थनसे वह रहत निनारा ॥
अक्षर ज्ञानसार में भाषा । पुरुषभेद याहीमें राखा ॥
यह पायहु तब आयब आई । धर्मदास मैं तुम्हें लखाई ॥

यमराजा जेहि देखि डराना । सोई शब्द अहै निर्वाना ॥
स्थिति भेद ज्ञान नहिं पावे । कास फांस कैसे मुक्तावे ॥
गुरु होइ बहियां ताहि लखावे । योनी संकट बहुरि न आवे ॥

साखी—ज्ञानस्थितिके पायते, जीवनमुक्त होइ जाय ।
कबीरा आन पुरुषकी, समरस सेज बिछाय ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
स्थिति ज्ञान कहां तुम पावा । केहि कारण यह पुहुमी आवा ॥
सो अब मोहि कहो समुझाई । जाते मनको संशय जाई ॥
तुम प्रभु अहहु मुक्तिके दाता । आदि अन्त कहिये विख्याता ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं विचारा । हंसराज बड भाग तुम्हारा ॥
जबही हतो पुरुषके पासा । पुहुपद्वीप सब दीप निवासा ॥
हंस दुखी भय कालके पासा । दया पुरुष तबे परकासा ॥
अमर वचन प्रभु भाष्यो जबही । पुहुपद्वीप विकसित भो तबही ॥

पुरुष वचन

जाहु सतायन तुम भवसागर । नौतम सुरति हो हंस उजागर ॥
जीवन फांस कालने डारी । तिनसों ज्ञानी करो उबारी ॥
भवसागरते जाय छुडाओ । अमरलोक हंसन बैठाओ ॥

सद्गुरु वचन

दाया होत चला मैं जबहीं । भवसागर पग दीना तबहीं ॥
देखेहु यमराजहि वरिवंडा । त्रास दिखावत हे नौखण्डा ॥
सब जीवन कहँ फांसी लावा । जब हम जाहि तुमहिं डरपावा ॥
शब्दसार कीन्हो संधाना । धर्मराय तब देखि सकाना ॥

साखी–सोई शब्द तुमते कहौं, धर्मदास लेउ मानि ।
जीव मुक्तावहु कालसों, सत्य शब्द परमानि ॥

और बहुत सुमिरन है भाई । बिना नाम नहिं काल नशाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवे करजोरी । भाषहु मोहिं नामकी डोरी ॥
कैसे भयो नाम जो सारा । कैसे भयो सबै विस्तारा ॥
सो यह भेद कहो गुरु स्वामी । करिय कृपा कहिय सुखधामी ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं बुझाई । स्थिति ज्ञान सुनो चितलाई ॥
आदि अंतको नहीं निवासा । तब नहिं पुत्रलोक परकाशा ॥
तब नहिं जीव जंतुकी खानी । तब नहिं अमी अमिरसआनी ॥
तब नहिं देह विदेही चीन्हा । ज्योति शून्य नाहिं तब कीन्हा ॥
तब नहिं इतो अग्रको मूला । अग्रहि अग्र अग्रहो झूला ॥
अग्र डोरी विहंग है नाला । विहंग अग्र तहँ आहि बिशाला ॥
विहंगवास सबहिन मों लीन्हा । विहंग अग्र कोइ विरले चीन्हा ॥
विहंग अक्षर हते प्रभु सोई । विहंग नाम महँ रहे समोई ॥
अग्र विहंग नाम सुनि लीजे । निरखि परखि तामहँ चित दीजे ॥
सोई अंश तुमहिं सम तूला । जो यह गहे अग्र निज मूला ॥

साखी–विहंग नाम प्रताप सुनि, भयो सकल विस्तार ।
कहैं कबीर धर्मदास सों भाख्यो शब्द विचार ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनती अनुसारी । समरथ खसम जाऊँ बलिहारी ॥
मोकहँ शब्द दीन्ह टकसारा । जीवन मुक्ति देइ भवतारा ॥
विदेह नाम गुण कहो बखानी । जासो यमकी होवे हानी ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं विचारा । राखो गुप्त गुप्त अनुसारा ॥

अगर विहंग सुरति भयउ जबहीं। हंस सुजन जन प्रगटे तबहीं ॥
विदेही अंग धार्‌यो प्रभु आई। त्रिहंग इच्छा तबहीं उपजाई ॥
बिदेह देहधरि भौ उजियारा। सूर्य्य उदित मूंदित भये तारा॥
देह धरे हाथ औ पाऊँ। रतन रंग बहु रंगवाऊँ ॥
वहतो नाम सुजन जन चीन्हा। दया कीन्ह प्रभु हमहूँ दीन्हा ॥
सञ्जीवन नाम आदि प्रकाशा। हंस सुजन जन कीन्ह निवासा॥

साखी–जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार।
कहैं कबीर धर्मदासों, उतरे भव जल पार ॥

धर्मदास वचन

चरण टेकि बिन्ती अनुसारी। साहब वचन जांव बलिहारी ॥
प्रथम स्थूल कहो समुझाई। बिदेह रूप जब पुरुष रहाई ॥
केतिक सज्याको परमाणा। जहँवा आप कौन स्थाना ॥
सोइ भेद प्रभु कहो निनारा। जीवन जन्म मुक्ति होय मोरा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम बिन्ती कीन्हा। अगम पंथ काहू नहिं चीन्हा ॥
मैं पाया सतगुरुकी दाया। धर्मदास मैं तुम्हें लखाया ॥
जेहि विधि पुरुष रूप संधाना। सो सब तुमसों कहौं निदाना ॥
अग्रमूल विदेह स्थाना। सोइ नाम सुजन जन जाना ॥
अब लों लङ्क द्वीप दिखलाऊं। बारह पलंग त्रिस्तार सुनाऊं ॥
बीजक अमान अखंडित द्वीपा। सत चैतन आनन्द समीपा ॥

साखी–अन्तरिक्ष छः पालंगभरि, लोलंग द्वीप स्थान।
तहां सो सब उत्पति भई, यही परमपद जान ॥

कंचन हेम द्वीप उजियारा। तहांते उत्पति भई हमारा ॥
तेरह पालंगा है सो ठाऊं। तिल प्रमाण सेज्या निर्माऊं ॥

---

१ शुभ

अस्थल रूप राई परमाना । प्रगटे महा नाम संधाना ॥
कला अनन्त अनंतहि धावा । बरनत जीव लक्ष नहिं आवा ॥
सत्य शब्द पावे परवाना । सोई हंस वहाँ करत पयाना ॥
जो नहिं गहत शब्द सहि दानी । सो पुनि परै नर्ककी खानी ॥
सुरति निरति ज्यों लौं लौलावा । सो हंसा जग बहुरि न आवा ॥
एही नाम सम्पूरन सही । एही नाम हंसा निर्वही ॥
मूलदीप तब नहीं निमासा । प्रथमहि श्रुती पुरुष प्रकाशा ॥
वही सुरति सब रचना कीन्हाँ । मूल शब्द हिरदे धर लीन्हाँ ॥
पुरुष गले पुहुपकी माला । हाथ अमर अंकूर रिसाला ॥
कहै कबीर सुनो धर्मदासू । एही मूल सब लोक प्रकासू ॥
और नाम बहुत कहे भाई । पुरुष नाम हंसा लपटाई ॥

साखी—यही शब्द दृढ़ कर गहो, कहै कबीर समझाई ॥
अग्र विदेही नाम गहि, अग्र रूप हो जाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवै कर जोरी । साहेब कहो ज्ञानकी डोरी ॥
जाते मन चित्त अस्थिर होई । चरण प्रसाद पाव घर सोई ॥
महा कठिन भवसिंधु कराला । लीन्ह उबारि काटि यमजाला ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । हंस राज बड भाग तुम्हारा ॥
और ध्यान सुमिरन हम भाखा । विदेह नाम सोह न्यारे राखा ॥
सो अब तुम कह दीन्ह चिन्हाई । देह विदेह लेहु निर्माई ॥
भाग बडे वाहीके कहिये । सुरति शब्द महँ वासा लहिये ॥
नाम महात्म कहों समुझाई । जेहि प्रताप यम देखि डराई ॥
ध्यान विदेह यहै परभाऊ । इकोत्तरसे पुरुष तरि जाऊ ॥
सार शब्द सों चित नहिं लागा । सोई जीव बड आहि अभागा ॥

साखी–अब मैं कहब तोहि सों, ए चित करो विचार ।
कहै कबीर पुरुषको, यही रूप निज सार ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अग्रमूल बिंदह परकाशा ॥
इच्छा पुरुष काया बंधाना । लीलागर दीप कीन्ह अस्थाना॥
सुजन हंस जन कीन्ह विश्रामा । धरै ध्यान पुरुषकर नामा ॥
तहँवा पुरुष कीन्ह अस्थाना । अस्थल रूपको कहों ठिकाना ॥
कंठमाल पुहुपनकी राजे । माँथे प्रभुके छत्र विराजे ॥
हाथ अमी अंकूर बिचारी । जगर मगर शोभा उजियारी ॥
उपमा काकहि बरनों भाई । कोटि भानु सोजायँ लजाई ॥
भालरूप बरनन कहि कैसा । बीस सहस्र चंद्र लखि जैसा ॥
शरवन शोभा देहु बताई । रवि सहस्र तहाँ रहे लजाई ॥
चक्षु अमीकर चितवन कैसी । सुधा सिंधु लहरें उठ जैसी ॥
नासा ग्रीवा कंठ कपोला । शोभा इनकी आइ अतोला ॥
मुखारविंद अरविंदहि जानी । उदय कोटि सूरजकी खानी ॥
उभय हंस अधरमो विहरै । दामिनि दशन उठत जनु लहरै ॥
भुजा बाँह मन चिकुर बनाई । हृदय राखि उर कलित लजाई॥

साखी–कटि नाभि पिंडुरी जंघनि, नख सिख बहुत अनूप ।
झलझलात झलकत महा, शब्दहि रूप सुरूप ॥

चौपाई

निगम नेति नेतिहि करिधावे । तिनको रूप बरन को पावै ॥
मन बुधि चित पहुँचे नहिं तहाँ । अबरण पुरुष विराजे जहाँ ॥
जहाँ लों निजमन दर्शन पावा ।तहाँ लगि वरणि कबीर सुनावा॥
अगम अगाध गाधमो नाहीं । ज्योंके त्यों प्रभु सदा रहाहीं ॥
अग्र नाम पुरुषके बरणी । भवसागरकी है यह तरणी ॥

ध्यान बीच जिन कीन्ह समारा। ते चढ़ि हंस होहिं असवारा ॥

साखी—कहै कबीरा धर्मदाससों, पहुँचे लोक मझार।
लीलागर दीप जहँ पुरुष हैं, हंसा करत विहार ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास जो विनती करहीं। वचन विचार मुखे उच्चरहीं ॥
तीन लोकमें व्यापक काला। धर्मराय जिव कीन्ह बिहाला॥
इहि भूमि यम जाल पसारा। नेम जाप षट करम अचारा ॥
इहि बिच सबही दुनी भुलानी। नाम सार काहू नहिं जानी ॥
एक मंत्र काहू नहिं पावा। पेड़ छोड़ डारही भुलावा ॥
प्रथम पेड़को पालन कीन्हा। पेड़ मरम काहू नहिं चीन्हा ॥

सद्गुरु वचन

पुरुष पेड़ निरञ्जन है डारा। त्रिगुण शाखा प्रति संसारा ॥
सत्य नाम नहिं जाने कोई। सार शब्द विन गैवी गोई ॥

साखी—नाम महातम भाषहिं, धर्मदास समझाय।
जो नर प्राणी नाम बिन, ताहि काल धरि खाय ॥

चौपाई

निवृति ज्ञान जीवन समझावहु। अजर नाम सो गुप्त छिपावहु॥
जो जियरा होवे अंकूरी। वासे कहों शब्द भरपूरी ॥
जिह्वा कहों तो जगत रिझाई। प्रकट कहों तो काल नसाई ॥
उपजे विनशेको संसारा। कैसे पूजे काल अहारा ॥

साखी—परकट जनि भाखहु, हिरदे धरो छिपाय।
बीरा दे समझायहु, सद्गुरु येहि लखाय ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी। बिन पांजी कैसे निस्तारी ॥
पांजी भेद कहो विर छानी। जाते मिटे जन्मकी खानी ॥

पांजी भेद पावा नहिं कोई । ताते गयो विगोइ बिगोई ॥
देहि बीच जोहि लखि पावा । ताकर आवा गमन नशावा ॥
जब तक आप चीन्ह नहिं परई । तब लग काज न एको सरई ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास मैं कहों विचारी । पांजीभेद कहों अतिभारी ॥
पांजी डोरी चित न धरई । मिथ्या दोष गुरुन कहँ करई ॥
यही भेद है अगम अपारा । अब मैं कहों सकल व्यवहारा ॥
जो चीन्है सो दरशन पाई । हंसहि हंस मिले पुनि जाई ॥
अनुचित वचन हमारे धरई । यमकी डगरी जाय सो करई ॥

साखी–पांजी कहों समुझायके; मन बिच लोकहि जाय ॥
मूलशब्द निर्बाण है, कहे कबीर समुझाय ॥

चौपाई

मूल शब्द है गुप्त जो सारा । बिरले पावैं शब्द हमारा ॥
सत्य वचन अस्ती ना माने । गहे हंस सो पहुँच ठिकाने ॥
अम्र अचित सुरति सोहंगा । एहि मूल गहि हंस विहंगा ॥
अम्र विहंग नाम जो पावै । तबही हंसा घरको आवै ॥
विहँग शब्द जाने नहिं कोई । सो तो गये विगोइ बिगोई ॥
सुरति बिहँगता ले चित जोरी । विहंग नाम बिहंग है डोरी ॥
बिहँग हंस विहँग है बीरा । निज सोकाम ये कहे कबीरा ॥
बिहंग शब्द बिहँग है नाला । विहंग पुरुष संग हंस बहाला ॥
सातों नाल जो आय बिहंगा । बिहँग पताल आहि जलरंगा ॥
तहँ बैठी जलरंगी शाला । बायें कर पृथ्वीकी नाला ॥
ता ऊपरहि कर्म अवतारा । कहे कबीर भेद टकसारा ॥
लघु दीरघ अक्षर नहिं जाना । कैसे संत होइ निर्वाना ॥
एक भेद जिनही लखि पावा । तिनके काल निकट नहिं आवा ॥

सोई सिद्ध संत है भाई । सोहं नाल चीन्ह जिनपाई ॥
पुरुषहि सम शिर सेज बिछावा । जिन जिन शब्द हमारा पावा ॥
नालहै सत्य पुरुषकी स्वासा । सो नाल पतालमें बासा ॥
तहां है पांजीको दरबारा । ता चढि हंस उतरिगो पारा ॥
पाँच नाम तिहको परवाना । जो कोइ साधु हृदयमें आना ॥

पाँच नाम

साखी—आदि उदित अति अजरमन, सप्त सिंधु निज नीर ।
अदल अदल सोहं गहै, साहब कहै कबीर ॥

चौपाई

यही सप्त नाल हैं सही । यही हंस नाम निरबही ॥
सप्तनालके सातों नामा । बीर बिहंग करै सब कामा ॥
सिंधुनालमें हंस पठाए । पुहुप नालसो सकल सुहाए ॥
अमीनाल महँ हंस पयाना । सुरति नालसे हंस सिधाना ॥
अन्ननाल महँ करत अहारा । सोहंग नालको सकल पसारा ॥
अजर नालघट कीन्ह विचारा । तबै पुरुषको दर्श निहारा ॥
सप्त नाल है एके गाऊं । सोई सुरति भेद निज पाऊं ॥
सद्गुरु मिले वस्तु निज पावे । बिन सद्गुरु को भर्म मिटावे ॥
सद्गुरुदया सबै कछु पाई । बिन सद्गुरु वह जाइ नशाई ॥

साखी—सतगुरु बडा सुनार है, परखे वस्तु भँडार ।
सुरतिहि निरति मिलाइके, मेटि डार खुटसार ॥
सद्गुरु सांचे शब्द हैं, कायाके गुणवान ।
जीवनमुक्त शब्दहि मिले, महापुरुषके ज्ञान ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी । मैं सब पायब तुम बलिहारी ॥
बलिहारी सतनाम तुम्हारी । जाते भयो सबै निस्तारी ॥

अब प्रभु मोपर दया हि कीजे। भेद अमीको मो कहिदीजे॥
अमी अंक केहि कारण कीन्हा। वह तो अंक मोर नहिं चीन्हा॥
सो प्रभु मोकहँ देहु चिन्हाई। अंक विस्तार कहो समुझाई॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि तुम बिनती अनुसारी। सोई भेद अब कहो बिचारी॥
ज्ञान स्थिति हम कीन्ह बखानी। जाते भई सकल उतपानी॥
जबहि देह धरी प्रभु आई। अमी अंक है अंक बनाई॥
अक्षर नाम देह धरि आई। अंक यही में कहो बुझाई॥
स्थूल धरो साहिब यहि कारण। बिन अस्थूल न वस्तु उचारन॥
मूलहि अंक विदेह विचारा। देह धरी नामहि संचारा॥
जो नहिं होत नाम परभाऊ। तो सब जगतकाल धरिखाऊ॥
जोकहँ लेइ नाम टकसारा। देह छुटी जाय पुरुष दुवारा॥
जबही नाम लेतहैं हंसा। तबही काल मरत है संसा॥
तारण हंस देहमें धरहूँ। यमको मारि मुक्ति मैं करहूँ॥
नाम प्रताप सबै कछु भाखा। सुमिरत हंस बोल हम राखा॥

साखी–हंस उबारन नाम यह, कहै कबीर बखानि।
जाय जीव सतपुरुष घर, धरमराय पछितानि॥

चौपाई

अमी अंक जब ही प्रभु कीन्हा। उतपति सकल ताहि हम दीन्हा॥
पुहुप दीप सब दीप निवासा। तीन लोक याते परकाशा॥
स्वर्ग पताल भयो पुनि सबही। अमीअंक पुरुषहि किय जबही॥
चन्द्र सूर्य सकलहि विस्तारा। अमी अंक सो भयो संसारा॥
अमी अंक दोइ रूप बनावा। पुरुष शक्ति सो नाम कहावा॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारा। अमी अंक ते सब संसारा॥
अमी अंकके गुण हैं ऐसे। सोरह सुत उतपत भये तैसे॥
अमी अंक जब नाहीं कीन्हा। तबही सुनहि शब्दमें चीन्हा॥

सोही अंक कही अब तुमसों । अंक प्रभाव सुनो तुम हमसों ॥
अमी अंक तुम राखि छिपाई । सुरतिवंत कहँ देहु लखाई ॥
अंक बिना पारस नहिं जोई । पारस बिना मुक्ति नहिं होई ॥
पारस लोहा कंचन सोई । पारस बिन पहुँचे नहिं कोई ॥
पारस परस गुरू शिर नावा । गुरु पारस परसे सतभावा ॥
सार शब्द है बीजक ध्याना । पारस आहि मूल स्थाना ॥
तब सुकृत मिलि सत्य समाना। सत्य शब्द निश्चय करिजाना ॥
सिखापन मानि पुरुषकर लीन्हा। बलि तुम्हार हम पारस दीन्हा॥
नाम तुम्हार न धोखे डारों । घट भीतर सो कबहुँ न टारों ॥

साखी–सब धोखा को मेटिके, पारस परसे संत ।
कबीर कहै धर्मदाससो, मेटों भवका अंत ॥

धर्मदास

धर्मदास चित बहुत हुलासा । ज्यों रवि उदय कमल परकाशा॥
दयासिन्धु पूरण गुरु स्वामी । कीन्ह कृतारथ अन्तर्यामी ॥
अविचल नाम मोहिं कहदीना । सकल जीव आपन कर लीन्हा॥
जो जिय नाम तुम्हारा पावै । अवागमन रहित घर जावै ॥
साहेब कहिये शब्द विचारी । जाते छूटे भ्रमकी बारी ॥
अन्त समै बालक कर आही । तब यम सुझ परै कहि नाही ॥
समय साधिबालक नहिं जानै । कैसे बाचे जीव आपनै ॥
यमकी घरी पहुँचे जब आई । तहाँको भेद कहौ समुझाई ॥
वह बाचैं यम जाइ हेराई । कष्ट परै सब सुधि बिसराई ॥
जड़ चेतनको है यह चारो । कैसे भवसे होत उबेरो ॥

सद्गुरु वचन

पुरुष अंश सुकृत तुम आगर । भलमति पूछब धर्मनि नागर ॥
सो समुझाइ कहूं तोहि रंगू । जाहि रंगभो यमको अंगू ॥

जब आवै बालकके पाहा । पलटे देह धरै निजु नाहा ॥
भक्तिरूप धरि आवै सोई । मस्तक श्याम फेर नहिं होई॥
जब जिय नाम करै सम्भारा । तब यमकी जड़ होवे छारा ॥
शब्द सिंधुमें रहै समाई । तहांयम कबहु निकट नहिं आई॥
शब्दविचार बारि दृढ़ करहीं । मूल हंस रखवारी धरहीं ॥
जब फिर चाहें करन पयाना । अग्रज नाम करी संधाना ॥

साखी--वंश छाय बीरा लिखो, नाम सन्धि चित लाय ।
कहै कबीर निःशंक हो, हंस लोक कहँ जाय ॥

जब सठहार चले लै हंसा । सप्त सिंधु पहुँचत गइ संसा ॥
सप्त सिंधु आसन जो करहीं । हृदय रूप हंसा सब धरहीं ॥
आगे लेन हंस तहँ आवहि । आरति साजि चीर पहिरावहि॥
कुशल क्षेम पूछे सब कोई । यमकी लज्या किहि विधि खोई॥
कहि प्रसाद आइ यहि ठाऊं । केहि करनी पहुँची इहि गाऊँ॥
तबै हंस उठि बोलै बैना । गुरुप्रसाद पाया निज नैना ॥
गुरु मोहि वह नाम सुनाई । तेहि प्रताप आये इहि ठांई ॥
तबही हंस पुरुष सो कहई । हंसन चाह दर्शकी अहई ॥

साखी—नाम महातम कबीरको, तेहि प्रसाद सो आइ ।
बिनय करत अभिलाख चित, पुरुषहि दरस कराइ ॥

चौपाई

पुरुष बुलाइ हंस कह्व लीन्हा । हंसन सकल डण्डवत कीन्हा॥
दीन सिंहासन क्षत्र जु धरहीं । हंस सुजन जन दर्शन करहीं ॥
सिंहासन बैठी सुख पावा । शब्द अहार पुरुष संग आवा॥
जन्म मरनकी भूख बुझाई । सब सुख भुगते अग्र अघाई ॥
निरंजन सुख सुधि नहिं पावा । ब्रह्मा विष्णु बैठि पछितावा ॥
रहतो हंस कहाँ उड़ि गयऊ । आदि अंत काहू नहिं लयहू ॥

साखी–यह सुख ज्ञान स्थितहिमें; जो कोइ भुगते आय ।
धन्य भाग्य वा हंसके, कहैं कबीर समुझाय ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनवै करजोरी । देह विदेह कहिब कछु थोरी ॥
कवने कमल उठत है बानी । कवने कमल शब्द सहिदानी ॥
कवने कमल मूल अस्थाना । कवने कमल सुरति पहिचाना ॥
कवने कमल ब्रह्मालिय वासा । कवन कमल है जीव निवासा॥

सद्गुरु वचन

अक्षय कमल सुशब्द उचारी । सुरति कमल बानी अनुसारी॥
श्वेत कमल निर्गुण अस्थाना । भँवर गुहा मूलहि पहिचाना ॥
कंबु नाल मूलके पासा । तहवां ब्रह्म लीन है बासा ॥
अष्टकमलते उठे जो बानी । कुसुमहि दल ताके परवानी ॥
बंकहि नाल बंक है घाटा । जो हंसा चीन्हे वह बाटा ॥

साखी–बंक नालनी नवरिके, भिन्न भिन्न कर लेख ।
भँवर गुहामें पैठिके, घरियारी कर पेख ॥
सुरति कमलके बीचमें, सद्गुरुको विश्राम ।
सहस्र जाप अजपा कही, पुरुषको निज धाम ॥

चौपाई

ब्राञ्छ कमलमें झिलमिल तारा। अलख सरूपहिको विस्तारा ॥
विषम सरोवर है तेहि ठाँई । मान सरोवर परे रहाई ॥
मान सरोवर दहिनो देही । सद्गुर पंथ तहां हो लेही ॥
आप कमल तेहिकहीं बखानी । बिरले जन कीन्हीं पहिचानी ॥
पारब्रह्म बस अधर अटारी । जगमग ज्योति जहां उजियारी॥
हीरा रतन जटित बहु भांती । लाल अमोल गने को पांती ॥

रत्न कमल पै सत्य विराजे। हिरमर हंस संग बहु छाजे ॥
गोरख दंत पहुँचि नहिं कोई। पारब्रह्म अस भवन है सोई ॥
ये सब अटकहिं सुनि मंझारा। सत्य पुरुष नहिं कीन्ह विचारा॥
चउदा कमल महँ सुन्न विराजे। द्वादश कमल गगन धुनि गाजे॥
भर्म भूलि अटके तहां ज्ञानी। भर्महिं भर्म भर्म लपटानी ॥
सुर नर मुनि पवनहि अवराधे। सिद्धहु बारे उनमनि साधे ॥
नाभी मण्डल पवन किवारा। तहँ लगि गमी कीन्ह टकसारा॥
हमरा घर कहुँ बिरलन बूझा। ऊर्ध कमलका पंथ न सूझा ॥

साखी—सुरति कमलपर बैठिके, अमी सरोवर चाखि।
कहैं कबीर बिचारिके, संत विवेकहि भाखि ॥
ऊर्ध्व कमलके उपरे, परिमल बास सुबास।
अमी कमल महँ बैठिके, दर्शन दर्श हुलास ॥

चौपाई

उत्पतिको वह वृक्ष बखानी। प्रलय कबहुं होवे नहिं हानी ॥
पिण्ड मांह वह वृक्ष बताऊं। अगम अगोचर गम नहिं पाऊं॥
अगम गोष्ठि तुम पूछन लाई। सुनो धर्म अब कहौं बुझाई ॥
अगम गोष्ठि अगम व्यवहारा। अगम पंथ हम कहौं विचारा॥
अब मैं कहौं जो गम्य बखानी। अगम गोष्ठि काहू नहिं जानी॥
उत्पति सब मैं तुम्हैं सुनावा। ये हमते कोउ जानि न पावा ॥
उत्पति सुनु वा वृक्षकी भाई। प्रलय तरे वह कबहुँ न आई ॥
जासों कहों अमरपुर गाऊँ। बिना बीज वह वृक्ष रहाऊं ॥
बिन धरती अंकुरहि आनी। पानी रंग नहीं उत पानी ॥
मूलवृक्ष वह पुरुष बखानी। शाखा तासु निरंजन जानी ॥
डाली ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। पत्र तासु संसार नरेश्वर ॥
सत्य सुकृत जहँ कर विश्रामा। अछय वृक्ष जाकर है नामा ॥
पत्ररूप संसार बखाना। धर्मदास लखवो यह ज्ञाना ॥

साखी–पानीमें सबउपजहि, पानि जान सब कोइ ।
जासों पानी ऊपजा, सो रँग कैसो होइ ॥

चौपाई

रंगहि रंग रंग उपजाया । एक रंगसे सब रँग आया ॥
बहुरंगीसे पानी भयऊ । पानी रंग नाद जो कियऊ ॥
नाद रंगसे वेद उचारा । वेद रंगसे भयो संसारा ॥

साखी–हीर डोरको भाव यह संत सुजाना देखि ।
कहै कबीर विचारिके रंगहि रंग विशेखि ॥
पुरुष डोर तुमसों कही, सुनो संत चित लाइ ।
धन्य भाग्य वह जीवके, ज्ञान स्थित जो पाइ ॥

चौपाई

सो सब तोहि कहिब चित लाई । परखि लेहु हियको समुझाई ॥
पांच तत्त्व जो प्रकटे आई । पांच तत्त्व वे गुणत रहाई ॥
सोइ तत्त्व तुमको न सुनावा । हृदये भीतर गुप्त छिपावा ॥
कौन शब्दसे तत्त्व जो आऊ । सो अनुसार तोहि समुझाऊ ॥
विदेह तत्त्व अगरको मूला । सोम तत्त्व आही अस्थूला ॥
अनुम तत्त्व सब दीप बखानी । अनुप तत्त्व सब दीप बखानी ॥
अंकुर तत्त्वसों सब कछु कीन्हा । ताको मरम न काहू चीन्हा ॥
पाच तत्त्व प्रगटे दुनियाई । तामहँ जीव रहै अरुझाई ॥
आप तेज वायु तत्व बखानी । पृथ्वी अकाश देह सब जानी ॥

धर्मदास वचन

कौने तत्त्व सो रची है देही । कौन तत्त्व है फूल सनेही ॥
कौन तत्त्व सो देहमें आवा । कौन तत्त्व निज मूल कहावा ॥

सतगुरु वचन

अजर तत्त्व निःस्वादी कहेऊ । पुहुपतत्त्व निजमूलहि लहेऊ ॥

अमी तत्त्वकी देह बखानी । अजर तत्त्वमूल पहिचानी ॥

साखी–अमरपुरीको येह गुन, अमर हंस होजाइ ।
कबीर ज्ञान स्थिति बिना, जीव प्रलय तर जाइ॥

चौपाई

नाद प्रकट बिंदुहिं सो भयऊ । बिन्दु प्रकट नादहि जो लहिऊ॥
शब्द भेदते श्वास जो जानी । श्वासरूप शब्दहि पहिचानी ॥
नाद बिंदु जब नाहीं रहिया । तबकी बात तुमहिसों कहिया॥
अमी अधर कीनी जब ग्रामा । नीर ब्रह्म लीनो बिश्रामा ॥
नाद निरञ्जन प्रगटे जबही । श्वास प्रेम गुरु कीन्हो तबही ॥
बिन्दु सकलसे भयो पसारा । देह बिदेह सो रहत न न्यारा॥
जब नहिं धरती नहिं आकाशा । तब नहिं सहज कूर्म परकाशा॥
चकित अण्ड चौंकरे सुचंदा । हमें देखि करि सहज अनंदा ॥
सारशब्द कबीरहि जाना । अंगहि अंग आहि बिहराना ॥
फूटा अंड कढे तब अंशा । योग जीत उपजे निःसंशा ॥
नहिं तब धरती नहिं आकाशा। साखी शब्द नहीं परकाशा ॥
तबही पुरुष कहां धौं रहेऊ । कौन तत्त्वमें बासा लहेऊ ॥
गुप्तहि तत्त्व गुप्त अस्थाना । गुप्त वस्तुमें रहे निदाना ॥
गुप्त हते तब प्रकटे भयऊ । अमर दीप उच्चारण लयऊ ॥
शब्द उचारो अमर अखंडा । बीरा सार बिदेही पंडा ॥
तादिन पुरुष आप जो रहते । कौन पिंडमें वासा करते ॥

साखी–राईभसा जो वस्तु थी, राई मर अस्थूल ।
लहर लहर दिल अंदरा, तहाँ पुरुषको मूल ॥

चौपाई

जब नहिं हते कूर्म नहिं कामा ।आदि पुरुष कीन्हो निज नामा॥
नाम सार हंसा जेहि पावा । वो जन चार काल पहुँचावा ॥

पहुँचावतमें कछु दिल मोरा । बारी लांघि सकै नहि चोरा॥
जो बोले तो शिर छिन जाई । खूट गहे तो अंग नशाई ॥
सारनाम सतगुरुने दीना । ताते धर्म शीस पर लीना ॥
जो कोइ करै नाम महँ वासा । ताकहँ होइ न काल तरासा ॥
नाम प्रताप काल नश जाई । काले खेले पुरुष जाई ॥
नौ दल गुप्त हृदयमें टीका । अमर मोक्षपद पावै नीका ॥
नौदल नाम जो कहौं बिचारी । षटदल काढि जो बाहर डारी॥
शुभ दल शुभचित बन भरमा ।भये दल क्रोध संत तज करमा॥
अस्थित दल राखे निज मनको। पहुँचे हँस लोक सुरजनको ॥

साखी–यहि गुण ज्ञान स्थितिहिमें, शब्द सिंहासन सार ।
कहे कबीरा नाम बल,पहुँचि पुरुषके द्वार ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनवे कर जोरी । साहब कहौं नामकी डोरी ॥
अगम निगम शारद औ शेशा । तुम दातामांगन सब देशा ॥
कहो बचन प्रभु हृदय विचारी । कैसे कूर्म लीन अवतारी ॥
आदि ब्रह्मका कहौं निवासा ।केहिविधि लीन कमलमें बासा॥

सतगुरु बचन

धर्मदास मैं कहौं बुझाई ।अकथ कथा कछु कही न जाई॥
आदि अन्तको नाहिं निवासा । श्वासा सार पुरुष परकाशा ॥
बिना नालको कमल अनूपा । पूरुष तामहँ कही सरूपा ॥
तबही भई अधर सों बानी ।बिन रसनावह अगम निशानी॥
बिनहि बिन्दु जिंद एक कियऊ। अजय अपार सरोवर लियऊ॥
अष्ट कमल तहां कीन्ह प्रकाशा। अष्ट पुत्र को तहां निवासा ॥
अष्टताल सुत नाम धरावा । अब मैं कहों नाम परभावा ॥
मनसा बुद्धि निरञ्जन कीन्हा ।सहज सुरतिसों उतपति लीन्हा॥

रंग रेख कर्म उपराजू । सरवन सुरति वहे गुण छाजू ॥
योग संत इनको बिरमाए । तिनको अंत न काहु पाए ॥
सुकृत अंश भये तेहि ठाऊँ । सोहं सुरति अचिंत बनाऊँ ॥
आठ अंश ये उपजे भाई । ज्यों दर्पण प्रतिबिंब समाई ॥
पुरुष सहज सो भाषे लीना । दीप एक तुमहुँ कहँ दीना ॥
अंमो दीप प्रदीप निवासा । गर्भते कूर्म तहाँ परकाशा ॥
तबही पुरुष कूर्म उपराजा । बाहर पलंग रूप तेहि छाजा ॥
उपजे कूर्म पृथ्वीको भारा । सोरह पलंग दीप विस्तारा ॥
रचना सबहि कूर्मकह दीना । इहतो चरित सहज नहिं चीन्हा ॥
साहब चरित लखे नहिं कोई । सुरति पुत्र उपराजे सोई ॥
महा अपर्बल है अधिकारी । पूरुषके कहिये भण्डारी ॥
दया करी सुरतीको जबही । सुरति अंश उपराजे सबही ॥

साखी- ज्ञानस्थितिके यहे गुण, सुरति कूर्म उपजाइ ।
कहै कबीरा नाम बिन, जीव अकारथ जाइ ॥

चौपाई

कूरम उदर बिदारौ जबहीं । चारों अंड फूट गये तबहीं ॥
चारों अंड ब्रह्मांड सम्हारा । कृत्रिम वस्तु कीन्ह संसारा ॥
कर्ता आदिपुरुष कर नाऊ । सोई नाम निरंजन पाऊ ॥
फूटि अंड चौभंगा भयऊ । पाँचो तत्त्व तीन गुण ठयऊ ॥
पंच अमीसे सब संसारा । पंच अमीका हैं विस्तारा ॥
पंच अमीकर नाम न जाने । सो मन आन केल तन ठाने ॥
अमी दहे है सकल जहाना । अमी रंगसे कीन्ह ठिकाना ॥
अमी वस्तु जिनही पहिचाना । पंच अमीको सकल जहाना ॥
पंच अमीको नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न सब तोहि बताऊं ॥

अमीके नाम

सिंधु सुअंशहि । १ । सुरंगको नाम । २ ॥ सहजसुतमूलको नाम । ३ । अकहअर्मा । ४ । अंकअर्मी । ५ ।

साखी–कही कबीर धर्मदाससों, पंच अमीको नाम ।
शब्द अमीसों जानियो, प्रकट भये गुणधाम ॥

चौपाई

अमी शब्द सुमिरे जो कोई । अमीस्वरूप होहि पुनि सोई ॥
अमी शब्द जिन नाहीं पायब । सोई जीव प्रलय तर आयब ॥
मूल शब्द राखे चित सानी । अमी शब्द मृष बोले बानी ॥
पाँच बेर सुमिरे नर कोई । ताकों आवा गौन न होई ॥
एहि शब्द मैं कहों बखानी । ब्रह्मा विष्णु महेश न जानी ॥
इह पुनि नहीं निरंजन पावा । धर्मदास मैं तुमहिं बतावा ॥
शब्द अमी सुपुरुष लिख दीन्हा । एकहु अंक परे नहिं चीन्हा ॥

साखी–कमल अंक पंखुरि अरु, सुरति बंध सुखसेज ।
कहि कबीर संशय गई, महापुरुषके एज ॥
ज्ञानस्थितके यही गुण, अमो अमी होजाइ ।
कहे कबीर धर्मदाससों, देह हिरण्मय पाइ ॥

चौपाई

धर्मदास उठ विनती कीन्हा । तुमरी दया पर्यो सब चीन्हा ॥
अपनो भेद कहों विलछानी । जाते परे दरस पहिचानी ॥
वहै शब्द गुरु कहो प्रकाशा । जामें ह्वै सुकृतको वासा ॥
वही शब्दमें दर्शन होई । भिन्न भिन्न मोहि कहो बिलोई ॥
तुमहिं सगुण तुम निर्गुण रूपा । कारण कारज कहिये भूपा ॥
तुम धरती तुम पवन अकाशा । तुमहीं चांद सूरज परकाशा ॥
जलथल भीतर कीन्ह निवासा । लोकद्वीप तुमहीं परकाशा ॥

तुमही माली तुम फुलवारी । तुम हौ करता तुमरी बारी ॥
तुम सागर जलहरी तरंगा । तुम मलीन तुम निरमल अंगा॥
तुम ही उडुगण पर्वत चंदा । मोमें तुममें हर्ष अनन्दा ॥
तुम गुपाल तुमहो दिन राती । सुर नर मुनि गंधर्व तुम ज्ञाती ॥
तुमही अलख तुमहि संसारा । तुमही हरि हर विधि अवतारा॥
तुमही लोप अलोप अलेखा । तुमही गुप्त प्रगट सब देखा ॥
तुमही पुरुष तुमही हो प्रकृति । तुमही योग तुमहि जुगति गति॥
चारों युग तुम करत निवासा । तुम रमता देहीमों बासा ॥

साखी--तुमहो दूसर अवर नहिं, तुमरा सकल प्रकाश ।
करहु दया अब मोहिपर, सत्य नाम विश्वास ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास तुम विनती कीन्हा । हमरो रूप न काहू चीन्हा ॥
अमरभेद अस्थलकै माहीं । जो पावे अस्थिर मन ताहीं ॥
लीलंगर द्वीप पुरुष अस्थूला । वही द्वीप उत्पतिको मूला ॥
गगन धरनी उत्पति सब नीरा । काया बीर सुनाम कबीरा ॥
याविधि पुरुष हमहि सों कहिया। बिन अंकुर जीव कहाँ रहिया॥
नाम हमार सुमिरै जो कोई । आवा गमन रहित सो होई ॥
हमरा नाम लेत घर आवै । सुख सागर निर्मल हो जावै ॥
नाम लेत जो काल डराई । सुमिरत नाम हो दूर हो जाई॥
हमरो नाम सार है भाई । जो चीन्है तेहि काल न खाई ॥

साखी--नाम हमारा मुक्तामणि, पुरुष आपहि भाखी ।
शब्द शिरोमणि सार यह, हंस सदा चित राखि ॥

चौपाई

येहि नाम लोके पहुँचावै । सुमिरत नाम पुरुष कहँ पावै॥
अब यह शब्द कहउ सम्भारा । सुनि हृदय महँ करो विचारा॥

जाते दुःख द्वंद मिटि जाई । धर्मराय बैठो पछिताई ॥
यहि नामको शिरहि चढाई । यामें सब सुख विलसे आई ॥
कपट रूप धरिहै जो कोई । भ्रमकी डगर परे पुनि सोई ॥
आदि शब्द सो नाम हमारा । जो बूझे सो उतरे पारा ॥
धन्य भाग्य हंसनके कहिए । जो या नाम मुक्ति मन गहिए ॥
सो करुणाकर बहुत उधारी । एक नाम चित लेय बिचारी ॥

पाँच नाम

आदि अजर १ । अदली अदल २ । पुरुष निरक्षर नाम ३ ।
मुक्तामणि प्रभुनाम जो ४ । सुख सागर विश्राम ॥

साखी—ज्ञानस्थितके येह गुण नाम विवेकी पाइ ।
कहै कबीर धर्मदासको, हंस लोकको जाइ ॥

चौपाई

धर्मदास चरण चित धरही । बार बार विनवे अनुसरही ॥
पाँजी नाम मोहि कहो विचारी। जामें होय हंस निस्तारी ॥
बिन पाँजी कहा जाने भेदा । पाँजी नाम गुरु कहीन खेदा ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । हंसराज बड भाग तुम्हारा ॥
नाम सिंधु पायो तुम जब ही । पाँजी निर्भय पहुँचे तब ही ॥
बिन निर्भय कोइ भेद न आवे । बिना भेद कैसे पहिचाने ॥
कहे कबीर होइ गुरु दाया । तबही हंस अमर घर आया ॥
अब सुनिये पाँजी को द्वारा । ता चढ़ि हंस उतरि है पारा ॥
एक नाम एक चित हो देखा । तहाँ हंसा सुख सागर पेखा ॥
पाँजी अद्भुत कहों सुमारा । ताते होय मुक्ति व्यवहारा ॥
सोहं शब्द उलली कर देखे । तिल प्रमाण जहां द्वारी पेखे ॥
उलटि पवन पश्चिमको घाले । गरजे गगन मेरु तहां हाले ॥

अरध ऊर्धबिच कमल अपारा । दामिनि कोटि होत उजियारा॥
पाजी नाम पंच दिल राखो । हंसा उबारन कहि यह भाखो॥

आकाशपाँजी

आदि अजर अदलीनिर नामा । सप्तसिन्धु है जियको कामा ॥
सप्तसिन्धु पाजी ले नामा । सो यह परब्रह्मको धामा ॥
यही नाम जियको रख वारा । खोलो कुंजी कुलफ केवारा ॥
हंस ले गए पुरुष दर्बारा । झिलमिल ज्योति झलक उजियारा॥
नाभि मण्डल पवन किवारा । दुरे सुनीरी मूलके द्वारा ॥
भए निरन्तर थकित शरीरा । धर्मदास कह मिले कबीरा ॥
धर्मदास यह दिलकी पाँजी । यही नाम धरि बहुरे साँजी ॥
पिंड नाम सो दिलमें मूला । येहि नाम पहुँचे अस्थूला ॥

साखी–ज्ञानस्थितके येह गुन, पुरुष पाजी निज सार ।
यह पाँजी जब पावही, हंस होइ निस्तार ॥

चौपाई

हो सद्गुरुमें तुम बलिहारी ।मिटि गइ तिमिर भई उजियारी॥
हों पतंग तुम भृंग गुसाईं । आप सरीख कीन्ह एहि ठाईं॥
सप्त सिन्धु पृथवीमें आहीं : सकल जगत इनहींके माहीं ॥
सप्त सिन्धु जो रहे पताला । सातनाल प्रभु कहौ रिसाला ॥
सातो नाल कवन विधि हेरा । जामें सुषुमण होइ निवेरा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह अकथ कहानी । बिरले हंस कीन्ह पहिचानी ॥
अगम विचार कीन्ह व्यवहारा । जासों भया सकल विस्तारा ॥
जबहीं हंसा तजे शरीरा । शब्द प्रताप होय गंभीरा ॥
सप्त सिंधु नर पावे कोई । सप्त सिंधुमें जाय समोई ॥
सप्त सिंधु आरम्भ न करई । त्यागि शरीर हंस गति धरई ॥
वास करे सुख सागर वासा । मान सरोवर करहिं निवासा ॥

सप्त सिन्धुके नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न सब तोहि लखाऊं ॥
सप्त सिन्धु अब लखि पावे कोई। समता सिन्धुमें रहे समोई ॥
योग सिन्धु अब कहों बखानी ।अजांवन सिन्धु लेव पहिचानी॥
अमर सिन्धु हंसा लखि पावे । अकह सिन्धुमें जाय समावे ॥
सुखहिं सिन्धुहि कीन्ह पैठारा । सप्तहि सन्धुहि नाम उचारा ॥

साखी—ज्ञान स्थितको पायके, मन सुस्थिर हो जाय ।
कहे कबीर धर्मदाससों पुरुष नाम समुझाय ॥

चौपाई

पुरुषहि नाम कहौं समुझाई । धर्मदास हिय गहो बनाई ॥
याही कारण अजपा कीन्हा । जीवन संधि परी नहि चीन्हा ॥
पुरुषहते तब मूलके ठाऊं । तब नहिं दीपलोक अवगाऊं ॥
चौबिश पुत्र तबे नहिं रहिया । तबही वचन अग्र जो कहिया ॥
ता पाछे ओंकार जो कीन्हा । ओंकार सो सब रचि लीन्हा ॥
साहब वचन सत्य फरमाया । सत्य शब्द अक्षर निर्माया ॥
कबहूँ नाहिन अस्थिर होई । बरा बार मन देइ बिगोई ॥
काया भीतर आप लखावा । ताते अजपा नाम कहावा ॥
याहि शब्दसे सुद्ध शरीरा । याहि शब्दसे मिले कबीरा ॥
याहि शब्द हृदय सुख होई । निर्मलहोहि विषहिं सबखोई ॥
अस्थिर मनकर प्रफुलित राखे । नाम संधि हृदये महँ चाखे ॥
निर्मल हंस होत हैं तबही । अमरलोक पहुँचि है जबही ॥
सातों सुरति तबहि परकाशा । पुरुषहि को राखे विश्वासा ॥
उतपति शब्द जबे निर्मावा । सोअक्षरमिलिशिवहिंकहावा ॥
शिवहि शब्दसों जीव कहावा । जीव नाम संसार कहावा ॥
सातों नाल वाहिके अंगा । जिहि जग भीतर माडो रंगा ॥
अक्षर शब्दसे शिव जो आवा । वाही अक्षर गुरू कहावा ॥

काशी मध्य मरे जो कोई। होहि पखान रूप तब सोई ॥
चौरासीसे रहित जो होई। पाहन रूपहि जन्म बिगोई ॥
शब्द संपूरन शिव जो जाना। त्यों सुकृतके बहुत परवाना ॥
अक्षत ले आरति कर सोई। उन कर मंत्र कहत सब कोई ॥
तारक मंत्र वयसको नाहीं। पण्डित शब्द गहत मनमाहीं ॥
यही मंत्र कहत सब कोई। साहब चरण न पावैं सोई ॥
क्षमा गुरू निश्चय जो पावा। सद्गुरु शब्द अहर्निश लावा ॥
क्षमा गुरू कहिए अविनासी। मानसरोवर तटके वासी ॥
रचना भेद ले शिव कह दीना। यहि विश्वास मनहि कर लीना॥
भवसुर केहि शिखावन एहा। सनकादिक कर चरण सनेहा ॥
यही प्रणालि गही सब कोई। गुरु निर्गुणकर भेद समोई ॥
याहीमें सब परे भुलाई। ढूंढ़तही जग कल्प बिताई ॥
जो चाहे सुकृत कर लेखा। आप आप सो करै विवेका ॥
उनकर चीन्हि अमरपद पाई। सूक्षम मुक्ति नाम गुण गाई ॥

साखी–यह गुण ज्ञानस्थितहिकें, जो पावै निज नाम।
अजपा जपै कबीरको, सो पहुँचे निज धाम ॥

चौपाई

शब्द पाय लोक जिन चीन्हा। नाम अखण्डित जब धरलीन्हा॥
मुक्तामणि निज नाम हमारा। हंस उबारहि भवसे पारा ॥

साखी–सोहं नाम हृदय धरै, और जपे नहिं जाप।
मूल शब्दही रटन कर, मूल शब्द हो आप ॥
करै निरूपण शब्दको, कहै कबीर बखान।
मूल ध्यान गहि पावही, सुख सागर अस्थान।
मूल शब्दके येह गुन, अमी दीपक कहँ जाइ ॥
कबीर ज्ञानस्थित बिना, मूल नाम नहिं पाइ।

गुरु महिमा प्रारम्भः

चौपाई

गुरु होहि वहि नाहि लखावै । गुरु बिन अंत न कोई पावै ॥
जिन गुरुकी कीन्ही परतीती । एक नामकर भव जल जीती ॥
गुरू पुरुष जिय करहि मराला । गुरु सनेह बिन काग कराला ॥
गुरू दया गुरु शब्द हमारा । गुरू प्रगट है गुप्त अधारा ॥
गुरु पृथ्वी गुरु पवन अकाशा । गुरु जल थलमहँ कीन निवासा ॥
चंद्र सूर्य गुरु सब संसारा । गुरु गंधर्व गुरु सब व्यवहारा ॥
गुरु ब्रह्मा और विष्णु महेशा । गुरु भगवान कूर्म औ शेशा ॥
चराचरहि जहँ लगि सब देखा । गुरु बिना कछू और नहिं पेखा॥
उत्तम मध्यम और कनिष्ठा । ये सब कीन्हे गुरू शरिष्ठा ॥
ये सब जीव गुरूमय जानो । गुरुसे भिन्न अन्य नहिं मानो ॥
कहँ कबीर सो हंस पियारा । येहि भांति गुरु दरश निहारा ॥

साखी-सो गुरु निशिदिन वंदिये, जासों पाये नाम ।
नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥

चौपाई

गुरू चरण जे राखे ध्याना । अमर लोक वह करत पयाना ॥
भ्रमर कमल ज्यों रहैं लुभाई । या विधि गुरु चरणन लपटाई॥
तन मन धन न्योछावर राखे । दर्शहि पर्श अमी रस चाखे ॥
चरण धोय चरणामृत पावै । पुरुष समीप पहुँच सो जावै ॥
गुरु बिहून अमृत नहिं दीजै । अमृत छांड़ि विषय रस लीजै ॥

साखी--महा पुरुषको नाम है; जा घट मांहि समाय ।
सोई सद्गुरु जानिया, अरु कृत्रिम सब पाय ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । समरथ खसम जाहिं बलिहारी॥

जबसे दीन्ह मुक्तिकर बीरा। तीन ताप मिटि गई अधीरा॥
साहब कहिये शब्द अनन्दा। जाते यमकर छूटै फन्दा॥
चरणामृत कैसे कर लीजे। तौन शब्द मोसों कहि दीजे॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहों विचारी। चरणामृत शब्दहि निरवारी॥
यहि पाये निज करहि अहारा। जासों यमकी छूटै धारा॥
प्रथम भोर मुख उठिके धोवे। काल कष्ट यमद्वार बिगोवे॥
फेर करहि शब्दको आशाना। वही शब्दसो मुक्ति निदाना॥
बहुरि हिये महँ नामहि आने। नाम विदेह दरश पहिचाने॥
नाम विदेही कठिन अपारा। ताहि चीन्हि कर करहु अहारा॥
ध्यान बीज गुरुचित महँ आने। सुरति निरति पुरुषहि पहिचाने॥
बहुरि शब्द आनंदित भाषे। मुख महँ धोइ नाम रस चाखे॥

साखी–इह गुण ज्ञानस्थितहिके, शब्द भेद निजसार।
गुरुचरणामृत लेहि तब, होवे हंस उबार॥

स्मरण

श्वेत मिठाई श्वेतहि पाना। श्वेत शब्द लेखनि परवाना॥
योग सत्य इन दीन्हो बीरा। मनको उलटि खोज ले हीरा॥
बीरा खाय भयो सुख भारी। प्रथम पुरुष ऊपर उजियारी॥
दूसर सत्य गुरु नाम जो भावा। तीसर लक्ष्मी लै घर आवा॥
चौथे जन्म मरण नहिं होई। जो चरणामृत पावे कोई॥

साखी–कालफाँस नहिं आवही, तन्त्र मंत्र क्षयमान।
बचन कबीर गुसाँइको, सत्य हि शब्द प्रमान॥

मंत्रसम्पूरण

धर्मदास वचन

चरण टेक कर विनती लाई। कीन्ह कृतारथ मोकहँ आई॥

सब विधि धर्मदास पर दाया । मुक्ति युक्ति गुरु सबै बताया ॥
साहिब कहिये शब्द उचारी । जौन शब्द मुखधोय निहारी ॥
सोइ शब्द गुरु कहो बखानी । जाते जरै कालकी खानी ॥

साखी--काल जरै कंटक जरै, राखौ चितमें नाम ।
मनसा वाचा कर्मणा, जाय हंस निज धाम ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह शब्द उचारी । याही शब्दसों हंस उबारी ॥
काल जँजाल मिटत है जबही । शब्द लेय मुख धोवै तबही ॥
काया शुद्ध होइ निज नारा । मुख धोवै मोहे संसारा ॥
दिन दिन मुख उज्ज्वल तेहि केरा । रविसमान मुख होय उजेरा ॥
अब मैं शब्द कहत मुख बानी । धर्मदास लीजे पहिचानी ॥

स्मरण

सिंघलद्वीप हंस कहां रहियऊ । पहले पार कबीर कहियऊ ॥
ब्रमले पानी सुख धोय । चंदन काटिके धोय मुख ॥
सुरति करहि अस्नान।तेतिसकोटि सुरदेवता लखे अभ्यंतरधरिध्यान
मुख धोवे मनमोही । औ देह नहिं जान ॥
मनमें ध्यान कबीर कहिये । रखे चित्त पहिचान ॥
मोरे माथे मन वसे । अवरहुँ मदिल कोइ ॥
सिंघलद्वीप ढिग बैठके । कबहुँ न जाय बिगोइ ॥

साखी--ज्ञानस्थितिके येह गुण, मुख धोवे सुर ज्ञान ।
कहै कबीर विचारिके, हंस होहि निर्बान ॥

चौपाई

धर्मदास यह धर्म अपारा । जासों होत दिगंबर भारा ॥
दिगंबर देह होत जब भाई । स्नान शब्द जब गुरुसों पाई ॥
यही शब्द धुंधलको दीन्हा । धुंधल राव मानि शिर लीन्हा ॥

मृतकहि देह धरे संसारा । बिना शब्द है काल अहारा ॥
स्नान शब्द हृदयमें धरहीं । जीवनमुक्ति होइ भव तरहीं ॥
यही शब्दसो धोवे अंगा । दिव्यदेह जानो परसंगा ॥
जो कोइ करे शब्द असनाना । ताकर धोखा जाय निदाना ॥
लक्षहि दान करै नर कोई । जीव दया बिन मुक्ति न होई ॥
जो धोवे निश्चय करि देहा । तबही कीजे शब्द सनेहा ॥
कहे शब्द अब कहो बखानी । धर्मदास लीजो शिर मानी ॥
नित्य प्रीतिकर शब्द स्नाना । ताकर दोष न रहै निदाना ॥

स्मरण

साखी—अगम सरोवर विमल जल, हंस बैठिके न्हाइ ।
काया कंचन मनमगन, कर्म भर्म मिटि जाइ ॥

पिंडहिसों ब्रह्मांडहि जाना । मान सरोवर करि असनाना ॥
सोहं सोहं ताको जापा । लिखत न करै पुण्य औ पापा ॥
पुण्य पापसे रहत न न्यारा । पैठि संत जन करो विचारा ॥
याहीविधि जो करि असनाना । सो हंसा करै लोक पयाना ॥
धर्मदास सुन शब्द विशेषा । गंगवारु इतने है लेखा ॥

स्मरण सम्पूर्ण

आदि अंत सब कहों बखानी । धर्मदास कीजो बिलछानी ॥
मूलपुरुष काहु नहिं जाना । सो तुमसो सब कहों बखाना ॥
मूलशब्द तहाँ अग्र कहावा । अग्र विदेह अस्थूल सुभावा ॥
मूलभेद काहु नहिं पावा । मूलनाममें गुप्त छिपावा ॥
कहँ प्रतीत देखी मैं तोरी । तातें कहों मूल निज डोरी ॥
मूलहि शब्द असंभव नामा । कहैं सुनें नहिं पावे ठाना ॥
चारलोक चार हैं नाऊँ । चार चार सो बरन सुनाऊँ ॥
सोत्त गुरू या विधि जो धरहीं । जैसी विधि तुम हम सो करहीं ॥

तन मन शीस न्योछावर डारै । तब गुरु शिष्य हृदय संचारै ॥
रंचक कपट हियेमहँ राखे । गुरुसनेह रस कैसे चाखे ॥
मुखसे बातैं मीठी करहीं । अर्थद्रव्य मन कृत्रिम धरहीं ॥
गुरुलोभी शिष्यलालचि जानी । परमारथ नाहीं पहिचानी ॥
कैसे ताकर होय उबारा । बूड़हि भवसागरकी धारा ॥

साखी–युक्ति मुक्तिकी को कहे, नरकहु नाहीं ठोर ।
पिशाचरूप भरमत फिरै, बाँधे यमकी पोर ॥

चौपाई

धन्य भाग्य तुम हमको चीन्हा । तन मन धन न्यौछावर कीन्हा ॥
यहि कारण मैं कीन्हो नेहा । मूलशब्दसों करहु सनेहा ॥

साखी–कहियत वचन विचारिके, तुम सुनियो चितलाय ॥
धीरज दृढता ठानिके, अमृत पिये अघाय ॥

चौपाई

जब प्रभु हते मूल अस्थाना । हंस सुजन जन नहिं उतपाना ॥
सो निज ठांम लखावों तोही । धर्मदास जो पूछे मोही ॥
तब ना हतो अम्रको मूला । तब ना हतो विदेह स्थूला ॥
तब नहिं हंस सुजन जनकीन्हाँ । तब यह हंस बास कहां लीन्हाँ ॥
तब साहब समसर उपराजा । समसर अग्र कीन्ह सबसाजा ॥
दश ग्यारह नाहीं ब्रह्मंडा । तब नहिं हते लोक अरु अंडा ॥
तब नहिं अमी अमी रस छंदा । तब नहिं दिवस रैन अरु चंदा ॥
सो अब कहौं मूल नहिं कन्दा । मूल विदेह नाम आनन्दा ॥
कहेउ भेद लहेउ निज नामा । जासों पूरण है सब कामा ॥
जेसे जलमें दिनकर ज्योती । यों घट भीतर लखिये मोती ॥
धर्म नाम असंभव नाऊं । निरालम्ब अग्रिम है गाऊं ॥
निरालंब आलंब ठिकाना । याविधि साहिबको पहिचाना ॥

सोमैं देखि तोहि समझाऊँ । यह तुम राखो हिय छिपाऊँ ॥
वह प्रभु निरालंब बतलाई । नाम प्रभाव पुरुष लखिपाई ॥
सार नाम जिन हिये समोई । काल जाल सब जाय बिगोई॥
निरालंब है अधर अकाशा । पृथ्वी पवनहि माँहि निवासा॥

साखी—निरालंबहि प्रभाव यह, सकल सृष्टि बिन नाम ।
अजर अमर विनसें नहिं, बिन थूनी बिन धाम ॥

चौपाई

सो विधि ताको मैं समुझाई । अविनाशी या विधि प्रगटाई ॥
बिना तत्त्व तत्त्व जो भयऊ । बिना प्रतीति भेद किमि लहेऊ॥
करि प्रतीति तजि अन्य उपाई । आनंद गांव अनंद कराई ॥
तब हंसा आनंद हो जाई । आनन्द शब्द हृदयलों लाई ॥
जीवतही नर मुक्ति होई । अक्षर गहि निर अक्षर होई ॥
येहि प्रताप अग्रको लहिए । स्थूल विदेह वाहिमो कहिए ॥
निरालम्बसो सो भए अलंबा । शब्द सरूप सृष्टि सब थंभा ॥

साखी—निरालंबके खोजमें, सब जग परो लुभाइ ।
जब सतगुरु दाया करै, तबही परै लखाइ ॥

चौपाई

धर्मदास जो विनती करही । चरणि पकरि शिर ऊपर धरही॥
तुम समर्थ मैं दास तुम्हारा । चरण प्रसाद भयो बिस्तारा ॥
एक विवेक कही समुझाई । वचन सुधा सुनि तृषा बुझाई॥
अब साहिब कहिये व्यवहारा । मृतक जीव गरुड संचारा ॥
जेहि विधि जीवहिगरुडजियावा। सोई भेद गुरु मोहि बतावा ॥
मूलशब्द अक्षर पहिचानी । अगमहि नाम अकाशे जानी ॥
सो कहिए प्रभु भेद बखानी । बाल जिवाइ गरुड नहिं आनी॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास बूझा व्यवहारा। यहै भेद अति कठिन अपारा॥
योगी जंगम रहे लखाई। याहि भेदको अंत न पाई॥
कलियुग महमदको अवतारा। तिनसो होय म्लेच्छ अपारा॥
वेद अथर्वनको मत लावहिं। मानस मारिसाख बतलावहिं॥
पीर पैगम्बर अजमत धारी। जीव दया नहिं कीन्ह विचारी॥
अनकढ वचन कहै दिन राता। माता पिता पूछे नहिं बाता॥
येहि वचन सुनि हृदय लगावो। समझि बूझिके गुप्त छिपावो॥
आपा माडि थाप सब कीन्हा। आतम संधि कृष्णकहि दीन्हा॥
अंबुजते अमृतहो आवा। अंबुजते जल पृथ्वी ठावा॥

साखी–कहै कबीर विचारिके, धर्मदास सुनि लेव।
दृढ हो अमृत पीजियो, सब जीवन कहि देव॥

स्मरण

ॐअकार न्याव सों सारा। अजब अतीत अचिन्त व्यवहारा॥
अजर अहार अती है उज्वल। स्थित उत्पन्न वही है निर्मल॥
अर्ध ऊर्ध याहिमें सही। बर्कत फर्क याहिमें कही॥
भयो अलखते सब संसारा। लयो अर्ध ऊर्ध पर भारा॥

साखी–अर्ध ऊर्ध आलेख सब, मैं मैं रहैं समाय।
कहै कबीर धर्मदाससों, सोहि रहे घर आय॥

बोल अडोल आप जो कहेऊ। दीप अदीप एक नहिं रहेऊ॥
अष्ट सृष्टि कहि पंच प्रभाऊ। ये सब वाहीसो होइ आऊ॥
कस नहिं जीव मुक्तिको लहेऊ। एक घरीक जो बोल कहेऊ॥
करि प्रणाम देहमें आवा। अजर अमर अटल घर पावा॥
पुरुष सँयोग जो सेय बिछावा। अर्ध ऊर्ध ऊपर सच पावा॥
रसना पाय अमृत जब चाषे। तब उठि जीव वचन मुख भाषे॥

साखी—यह गुन ज्ञानस्थितहिके, जीव जीव तन आव ॥
कहे कबीर धर्मदास सों, अर्ध ऊर्ध संभाय ॥

सम्पूर्ण स्मरण—चौपाई

भाषों जो प्रभु अमृत कीन्हाँ । जेहि विधि अमृत सिरजेलीन्हाँ॥
धर्मदास यह कहो बुझाई । जेहि विधि अमृत कीन्ह बनाई॥
आपहि आप अधर जो आवा । अमृत वही कूर्म जो पावा ॥
कूर्म जाय रीति जेहि बैठा । धर्म सहितसों कीन्हों पैठा ॥
सहज निरंजन भेद बतावा । भाषो भेद बरण सब पावा ॥
धर्मराय कूर्महिपर आए । कूर्मनाथ जहां अम्र रहाए ॥
मस्तक काटिय पेट विदारा ।कूर्म दुखित भए शक्ति निसारा॥
प्रकट समुद्र तभीसों भयऊ । जबही पेट विदारि लयेऊ ॥
अमृत धर्मराय कछु पावा । कछु गिरपरा समुद्र समावा ॥
अमृत विष्णु तबही जो लीन्हा । जबही मथन समुद्रहि कीन्हा ॥
अमृत तबहि निरंजन पावा । सोई अम्र सुकृतहि समावा ॥
धर्मशील का‌ि है तबही । विषम सरोवर उपजो जबही ॥
धर्मराय अमृत जो पावा । तेहि कारणसों अलख कहावा ॥
अम्र शीश कूर्मके पाई । ब्रह्मा विष्णु तबै उपजाई ॥
जीव जंतु पृथ्वी उपजावा । यह बल विष्णु राजसों पावा ॥
इंद्र जाय तब सेवा करहीं । भांति भांतिके सुख अनुसरहीं॥
तृप्त कीन्ह देवन सब अंगा । विष्णु दया कीन्ही परसंगा ॥

साखी—सूक्ष्म इंद्र दया करी, इंद्र साजि विस्तार ।
ब्रह्मा विष्णु महेश मिलि, कीन्हों सकल पसार ॥

चौपाई

धर्मदास जो बिनती लावा ।गरुड़ अमृत केहि कारण पावा॥

सतगुरु वचन

पूर्व कथा अब कहां बखानी । धर्मदास लीजो बिलछानी ॥

नागहि लोक इंद्र जो गयऊ । सुधा हेतु कारज तेहि ठयऊ ॥
डारेउ नाग फाँसते तबहीं । कौन छुड़ावे याते अबहीं ॥
नागदेवके मात रहीया । गरुड मातसोंहीं छल करिया ॥
माथे लीन्ह गरुड़की जीती । छलसों भई दयाकी रीती ॥
गरुड़ मात कहि वचन सुनाई । दासी भाव कहां तुम पाई ॥
तब उठि माता वचन उचारा । सुनो पुत्र एक भेद हमारा ॥
नाग मात मोहि वचन हरावा । याते दासी भाव रहावा ॥
पीतबरण शशि हम कहि सोई । श्याम बरण उन करो बिलोई ॥
यह छल जानि परा नहिं मोही । सुनो तात समुझावों तोही ॥
कोपि गरुड तब गये पताला । नागलोक जहँ विषकी ज्वाला ॥
देखत गरुड नाग सब भागे । मातासो छल कीन्ह अभागे ॥
माँगो सो हम तुम कह देही । हम कहँ त्रास देव जिन एही ॥
गरुड अहिन तब वचन उचारा । अमृतकुण्ड देव सब धारा ॥
नाग आइ तब कीन्ह निहोरी । गरुड इंद्रकी बंधन छोरी ॥
अमृत लेइ दर्शनको गयऊ । नाग गरुड पहुँचावत भयऊ ॥
गरुड मात नाग जब देखा । दासहि भाव तजब तुम रेखा ॥
अमृत पाइ गरुड बरियाना । तब छल इंद्र गरुसों ठाना ॥
गरुड महाबल सुख लहलीन्हां । बोई बंबूर अमृत किमि चीन्हां ॥
ज्यों मलयागिरि निकट रहावा । तास्वरूप काहु नहिं पावा ॥
कूर्म उदरसे सो चलि आवा । सुधा समुद्र मथे तब पावा ॥
गुरु द्रोहसों जन्म बिगोई । नाम पाइ अस्थिर नहिं होई ॥
चंचरीक चंचल है बहई । मलयागिरिकी सुगँध न लहई ॥
मलयागिरिको यहि प्रकाशू । बिष नहिं बेधे बास सुबासू ॥

साखी–मलयागिरिके बाससे, सब द्रुम होइ सुवास ।
बासन कबहूँ बेधही, सदा रहत है पास ॥

तबहि सुकृत बिनवे करजोरी। कृपासिंधु सुनि बिनती मोरी॥
प्रथम तत्त्व प्रभु भाषव तुमहीं। सो सब बूझ परैगी हमहीं॥
पाँच प्रगट गुप्त हैं पाचा। प्रगट समझि लीन्हें हम साँचा॥
पाँच गुप्तको कहिये लेखा। पाँच प्रगट ये सब हम देखा॥
पृथ्वि तेज जल पवन अकाशा। सो प्रभु मोहि कहो परकाशा॥
जिहिं विधि ए प्रभु प्रगटे आई। सो प्रभु भाव कहेउ समझाई॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम जो कछु बूझा। सो सब भिन्न २ हम सूझा॥
पृथ्वी रही गुप्तके नेहा। बहुरि प्रकट हुये शब्द सनेहा॥
पृथ्वी अंग वैराटहि जानी। पाँव पताल शीस अनुमानी॥
इच्छा सुरति शक्ति उपजाई। वैराट रूपमें जाय मिलाई॥
अलख निरंजन यासों कहिये। यही ख्याल अविगतको लहिये॥
मन माया जब एके भयऊ। सकल सृष्टि उत्पन्ने लयऊ॥

साखी–जब दोई एके भये, भयो लीन मन ठौर।
नाभिकमल ब्रह्मा भए, सब रचनाको मौर॥

चौपाई

धर्मदास अब कहों बखानी। तुम हिरदे कीजो बिलछानी॥
पाँच तत्त्व जे गुप्त रहावा। सो सब भेद तोहि समझावा॥
पाँचहि अमी पुरुषने कीन्हा। पांच तत्त्व ताही सो चीन्हा॥
अचल अमी जो अकाश बखानी। शब्द अमी वायू उतपानी॥
अजर अमी सो तेज पसारा। अकह अमी जलतत्त्व सम्हारा॥
रंग अमी सो पृथ्वी भयऊ। रचना सब याही पथ ठयऊ॥
पाँचों अमृत तहँवा छाजे। पाँचतत्त्व तासों उपराजे॥
पाँच तत्त्व सों देह सँवारी। तीनों गुण तामें अनुसारी॥

देही गति काहु नहिं पावा । देह धरे यम काम सतावा ॥
आतमरूप रंग जिन जाना । प्रफुलित होय कमल विकसाना॥
हर्षित भयउ बुन्द जो ढारा । परै अगाध सिंधु मझधारा ॥
परतहि बुंद रंग सब छाजा । जलतरंग जल रंग विराजा ॥

साखी-यह गुण ज्ञानस्थितिहिके,जलतरंग उपजाइ ।
जलसों सब जग ऊपजो, जलधौं कहा समाइ ॥

चौपाई

नाम तत्त्वजल तत्त्वहि कीन्हा । अस्तुति जलहि रंगकर लीन्हा॥
जल ऊपरहि कूर्म उपराजा । कूर्मपीठि वाराह विराजा ॥
पीठ वराह शेष जो रहई । शेषहि फनपर पृथ्वी धरई ॥
कूर्म सुरति पुरुषकी अहई । उनको अंश कूर्म इह लहई ॥
महापुरुष आसन जहाँ आई । स्वासा शब्द पुरुष उपजाई ॥
बहुरि तेज पुरुष परकाशा । सुरके घर हो तेज निवासा ॥
आनँद रूप लोचन जब कहे । तेज हर्षपर घट हो चहे ॥
हरष तेज सूरय उतपानी । सो सब जगमें कीन्ह पयानी ॥
तेज अंग सूरय कर रूपा । शीतलता शशिके स्वरूपा ॥
या विधि दो अंश उतपानी । धर्मदास लीजो बिलछानी ॥
अंग सूर्य शशि लयो बनाई । तेज हर्ष गुण उभय बताई ॥

साखी-कूर्म उदरसों प्रगट है, रहे जगतमें छाय ।
बिन सतगुरु नहिं पावही, कहे कबीर समझाय ॥

चौपाई

जो अज्ञान ज्ञान नहिं जाना । तासों भेद न कहब सुजाना ॥
बहे बाये मन थिर नहिं जेही । सार शब्द कहा करे सनेही ॥
स्वासासार पुरुष उपजाई । सुरहो श्वासहि समसर छाई ॥
समसर भेद जानि नहिं कोई । अब श्वास तेहि कहिए सोई॥

वहै गुप्त यह प्रकट बताई। यामें फर्क न जानहु भाई ॥
समसर पवन है सकल सुगंधा। ता बिन जगत आय सब धंधा॥
गंध विगंध रची यह देही। समसर पवन सुगंध सनेही ॥
समसर अंग अम्रको आहै। समसर गहे पुरुषको लाहै ॥
अम्ररंग बाँए उपराजा। उनसों होत रंगको साजा ॥
रंग रेख सब उनसों होई। मृतकर रंग डार उन खोई ॥
रंग बाँएसे हरियल कीन्हा। हरियल रंग जात सब लीन्हा॥
जीव जन्तु औ कीट पतङ्गा। द्रुम औ बेली सबके सङ्गा ॥
घास पात जिव सकल बिहङ्गा। हरियल राखो सबके अङ्गा ॥

साखी-यह नहिं होतो जगतमें, मरत सकल कुम्हलाय।
ज्ञानहि अस्थित पुरुषकी, कहैं कबीर समुझाय ॥

चौपाई

एहि वायु हरियर जो कही। हरियर वायु तुहासों सही ॥
अकाशमंदिरमें कीन्ह निवासा। जेहि मंडलते उपजी स्वासा ॥
याविधि उपजन भौ सब ठौरा। संसारी भेद कहों कछु औरा ॥
कालफंद फाँसी बड़ डारी। तामों परे न वस्तु विचारी ॥
जब स्वासा साहँहि उठाई। मूल दीक्षा प्रथम कहाई ॥
जब बालकको दीक्षा दीजे। बीरा देकर अस्थित कीजे ॥
सार नाम तब देव लखाई। जरा मरण सुस्थित घरपाई ॥
जो निज करै नाममें बासा। जासो स्वासा नाम प्रकाशा ॥
बिना नाम कालकी फाँसी। दीक्षा मूल यही परकाशी ॥

साखी-मूल दीक्षा संग इह, लेहु मंत चित लाय।
धन्य भाग्य वा हंसके, नाम संधि जो पाय ॥
बिना शब्द संधी बिना, काहु न पाई बास।
संधि नाम हंसा गहै, करै काल नहिं त्रास ॥

सत्य सुकृतकी रहनि रहि, गहु अजेमन नाम ।
कहैं कबीर धर्मदाससों, सत्य शब्द परमान ॥
सत्य सुकृत लों मेंड़ है, ग्यान ध्यान धर धीर ।
शब्द अजानन है वही, सोई संत कबीर ॥
अजर अमर वह पुरुष है, सत्यनाम बँधि छोर ।
कहे कबीर धर्मदाससों, थाह शब्द शिरमोर ॥

चौपाई

अब मैं कहौं अकाश बिचारा । जिहि बिधि भयव तासु विस्तारा ॥
अकाश अंड मध्य जो रहेऊ । अकाश भेद बिरले जन रहेऊ ॥
अकाश अंग सो सब निर्मावा । शून्य मंदिरतें नाभी आवा ॥
पृथ्वि अकाश योग अब कीन्हाँ । शब्द हेतु काहु बिरले चीन्हा ॥
तालमृदंग अकाशते होई । रहित शब्द पुनि सुनी समोई ॥
अकाशबीच असहोय गुजारा । बिना मृदंग शब्द झनकारा ॥
अकाश पेट अकाशहि चीन्हा । सुरति सुनी आकाशहि दीन्हा ॥

सखी–कहे कबीर अकाशगुण, बूझत बिरला कोय ।
लीलारंग अकाशका, सुनिनो सत्य बिलोय ॥

चौपाई

जो मंदिर अकाश नहिं देखे । तबलगि शब्द रहत अनपेखे ॥
पाँच अकाश तबै लखिपाई । जबै मंत्र गायत्री आई ॥

साखी–भेदाकाश गुण अधरहै, ज्यों लखि पावै कोइ ॥
नहिं अक्षर लखि आवही; पहुँचे निज सोइ ॥

मंत्र गायत्री

धर्मदास विनवे करजोरी । भाषो शब्द गायत्री डोरी ॥
भेद गायत्री बालकको दीजे । प्रेम सुफल बालकको कीजे ॥

यापर कीरत कैसे जाई। प्रकृति अंग मायाको भाई ॥
माया अंग अष्टांगी कीन्हाँ। अष्टांगी गायत्री चीन्हाँ ॥
येह शब्द हम कहो बुझाई। लीजो संतो शिरहि चढ़ाई ॥
बारा योजन बुड़े जाइत्री। पल पल छूटे इहीठाँ गायत्री ॥
भ्रमनाको आगो यह टूटे। ब्रह्म कथौ हिरदय रस लूटे ॥
जार बार कालहिकर छीरा। करकर निर्मल अंग शरीरा ॥
बास अमरपुर शब्द संधाना। कहै कबीर काल पछिताना ॥

सम्पूर्ण

न्यास

रक्षा प्रथम न्यास जो करई। सुर गंधर्व न्याससों डरई ॥
कालजाल निज बंदन होई। निर्मल रहै काल कहँ खोई ॥
भूतहि प्रेत वीर बेताला। वायु बतास और सैताला ॥
साठ तीनसौ ऊखत कहिये। दृगन्यास कर एक न रहिये ॥

साखी—यह गुन दृग अन्यासके, कहै कबीर बखानि ॥
प्रथम रक्ष या कह पढे, चढ़ि हितचित पहिचानि ॥

चौपाई

दुष्टनको बंधन है येही। हंस मुक्त मन मुक्ति सनेही ॥
दृगन्यास प्रथम जो पढ़ई। तब रक्षा मन शब्दहि दृढ़ई ॥
दृगन्यास बालकको चाही। संशे अंश रहित हो ताही ॥
यही शब्द मैं कहों बखानी। यही भेद बिरले पहिचानी ॥

साखी—उत्तम मध्यम अधम जो, सबहि करै निर्वाह ॥
दृगन्यासके येह गुण, कुशल क्षेम प्रवाह ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती उठि कीन्हा। पुरुषहि भेदसकल हम चीन्हा॥
निश दिन चरण चित्त तव धरहू। अन्य उपाय सबै परिहरहू ॥

येहि वचन प्रभु कहो बुझाई । जाते काल दंड दुख जाई ॥
इंदुमती कह काल सतावा । रहि सचेत शब्द लखि पावा ॥
सो मोहि भेद बतावहु स्वामी । करहु कृपा गुरु अन्तर्यामी ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भल पूछन कीन्हाँ । सो अब भेद तोहिकहि दीन्हाँ॥
रानी काल कीन्ह जब त्रासा । तब हम शब्द कीन्ह परकाशा॥
साधु संत सेवा चित धरहीं । भक्ति प्रेमबहु विधि सों करहीं॥
हमहिं छोड़ि नहि जाने दूजा । कुलकरनीकी छाँडे पूजा ॥
तजि कुल करनि अमरपदपावा। येही सात नाम चित लावा ॥
तोसों शब्द बिरहुली भाखी । तव कारण हिरदेमें राखी ॥
येही शब्द लेहु शिर मानी । मनसा वाचा निश्चय जानी ॥

बिरहुली

आदि अन्त तब न हते बिरहुली। भूमि अकाशहु न हते बिरहुली॥
तब विष नहिं अवतार बिरहुली। विषकीक्यारितुमबाहिबिरहुली॥
विषका कीन्ह अहार बिरहुली । सवा लक्ष पर्वत थे बिरहुली ॥
तहाँ विषको अवतार बिरहुली । गड़िगड़िशंकर बोइ बिरहुली ॥
पर्वति डारेउ पानि बिरहुली । सोविष संतहि खाइ बिरहुली ॥
विष माटि होय जाय बिरहुली। मउरी संसय करिय बिरहुली ॥
आफूयों हरतार बिरहुली । सबसों शब्द निरंत बिरहुली ॥
भागु विषपैठि पताल बिरहुली। बनहि कंदविषविकल बिरहुली॥
पोस्त धतूरा भाँग बिरहुली । गुरु वचन धरि बाँध बिरहुली ॥
विष न संचरे अंग बिरहुली । उदमदविष मदराज बिरहुली ॥
यह विष बिरलै सम्हार बिरहुली । जब नहिं स्वर्ग पताल बिरहुली॥
तब विष नहिं अवतार बिरहुली । दूत भूत सब भगे बिरहुली ॥
जहां बसे साधू संग बिरहुली । भोगा [illegible]थो तें का[illegible] बिरहुली ॥

कहाँ ये डसवत आये बिरहुली । साखी नामकी चले बिरहुली ॥
सब दुख तुरत नशाये बिरहुली। नामकी कहाउतपाति बिरहुली॥
सबहि तुच्छ कह जाय बिरहुली। वचनादिके अकार बिरहुली ॥
मन विष दूरि पराय बिरहुली । तनसों दूरि ह्वै जाय बिरहुली ॥
शब्दसुनत विष जाय बिरहुली। हरि प्रकटे संसार बिरहुली ॥
साहिब कीयो संसार बिरहुली । दूत भूत सब हारि बिरहुली ॥
पहुँचे सत्य कबीर बिरहुली । भई यम जिय पीर बिरहुली ॥
इन तन बिष न समाय बिरहुली । उत्तर रानी पाय बिरहुली ॥
उठिके आसन दीन्ह बिरहुली । बिरहुली दुःख नशाय बिरहुली॥
बार बार शिरनाय बिरहुली । कबीर गुण गाय बिरहुली ॥

बिरहुली संपूर्ण

धर्मदास वचन

धर्मदास फिर विनती करहीं । सतगुरु चरण शीश पर धरहीं॥
अब प्रभु कहिए लोक सरूपा । दीन दयाल कृपाल अनूपा ॥

सदगुरु वचन

धर्मदास मैं कहों बुझाई । विना भेद लोके नहिं जाई ॥
अंधी सुरति शब्द बिन जानौ । लोक दीप कैसे पहिचानौ ॥
शब्द पाय जब सुस्थिर होई । थान मुकाम लखै पुनि सोई ॥
जो लखि पावै थान मुकामा । सुरति चलै तब पावै नामा ॥
विना नाम नहिं ठौर ठिकाना । अंध सुरति हो रहे ठगाना ॥
सोहंगत सब छहों बखानी । एक चित्त ह्वै गहे जु प्रानी ॥
पुहुप दीप सब दीप निवासा । छब्बिस दीप रचौ तेहि पासा ॥
कंचन दीप पाहु पर सोहैं । रत्न अनूप कोटि रवि मोहैं ॥
तहां पुरुष पर कीर्ति विराजै । उत्पति प्रलय तेहिपर छाजै ॥
लीलागर दीप पुरुषको वासा ।जहां पहुँचे न कालकी त्रासा ॥

कालहि गमी वहाँ नहिं आवे । सहज पुरुष जहाँ बैठि रहावै ॥
विनती सहज कीन्ह कर जोरी । जीवन बंध वेगि प्रभु छोरी ॥
बीज शब्दमें सोहं बीरा । यह उत्पनि गुरु कहैं कबीरा ॥
यहाँ गमी कोऊ नहिं पावे । जहाँ लीलगर द्वीप रहावै ॥
तहाँ सुजन जन बैठे ज्ञानी । सत्य सुकृत दोई अगवानी ॥
अब मैं कहौं दीपकर लेखा । जाविधि रचित्र रंग औ रेखा ॥
बीज शब्दमें सोहं बीरा । ये उत्पन्न सुन धरौ शरीरा ॥
जगमगज्योति सदा उजियारा । शब्दरूप काया कर प्यारा ॥
शब्दहि हेत वचन हैं बोटा ।रत्न शिला चहुँ दिशि है कोटा॥
लोक नाम है लोक अनन्दा । उडगन महँ सोहत जस चन्दा॥
आस पास कंचनकी बारी । हीरा लाल रत्न अवतारी ॥
कहा कहौं मंदिर कर रेखा । खम्भा कंचनके आहि विशेषा॥
सिंहासन अति तहाँ विराजै । कंचन जडित लाल बहु छाजै॥
लागै कोटि चहूँ दिश रूपा । चन्द प्रकाश ही जान स्वरूपा॥
तेतिस कोटि सूर्यकी पाँती । बीच बीच देखो अस कांती ॥
तापर सोहत अधर अटारी । हीरा मोती बहुत सँवारी ॥
ता ऊपर शोभित कस रेखा । कोटि रत्न दमकत जनु लेखा॥
मोतिक चौक पूर जनु डारी ।शोभित चौक कलित विस्तारी॥
ता ऊपर जु रंग अस सोहै । मानहु रत्न मणी मय होवै ॥
जगर मगर सोहैं उजियारी । उपमा बरण सके को प्यारी ॥
बहुत हि उपमा को कह दीजे । कोटिन भाग सूर्य शशि कीजे॥
पालँगरूप काकहिके बखानी । हीरा रतन बीच बिच खानी ॥
सेजरूप शोभित शशि खानी । चन्द्र सूर्यकी ज्योति छिपानी॥
चन्द्र सूर्य नाहीं तह तारा । नाहिं रत्न कञ्चन महि भारा॥

साखी–ज्ञानस्थितिके येह गुण, पुरुष रूप उजियार ।
पलमें इच्छाते भए, लोक दीप विस्तार ॥

चौपाई

तहाँ पुरुषने सेज बिछाई । चन्द्र सूर्य जहाँ रहे लजाई ॥
तिलभर सिज्याको परवाना । सोहं सुरति अभयपद ज्ञाना ॥
तहवाँ पुरुष करहिं आनन्दा । जिनसों अमी भए सब छन्दा ॥
तहाको बरन कहे को भाई । लक्ष जीवसों नाहिं कहाई ॥
अमर चीर सोहं अस अंगा । सूर्यमणीसों अधिक सुरंगा ॥
यही व्रत हंसनको भाई । पुरुष रूपको कहै बनाई ॥
शोभा कहो दोऊ कर पानी । चन्द्र सूर्यकी ज्योति छिपानी॥
सर्व वरणको कहो बुझाई । उभे सूर्य मानो उमगाई ॥
दंत सुरंग शोभित अति भारी । मानो मणि बत्तीस विचारी ॥
भालरूप का कहों बखानी । चन्द्र किरण मानो लपटानी ॥
इक २ चरित वरणि नहि जाई । मानहु सुकृत सत्य उमगाई ॥
अधर नासिका सोहत कैसा । उभय हंस बिहरत हैं जैसा ॥

साखी—बरणन सबका याहको, मोसों कहो न जाय ।
उपमा केहिको, दीजिये, पटतर नाहि दिखाय ॥
सूरय होय समुद्र भर, भू अकाश भरि चंद ।
तबहु न पटतर पाइये, पुरुष वदन आनंद ॥
राई भर वह वस्तु है, अधराई अस्थूल ।
लहर लहर घटमेंकरै, वही पुरुष निजमूल ॥
इह गुण ज्ञानस्थितिहिके, कहे कबीर समुझाइ ।
पुरुष ध्यान जबही करै, सब दुख जाय पराइ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास तब बिनती ठाना । दीन्हों मोहि मुक्ति फलदाना ॥
साहेब कहिए मोहि बखानी । सत्ताइस दीप कहो बिलछानी॥
दीपनको कहिये मोहि लेखा । जामें परचे शब्द विवेका ॥

धर्मदास जो पूछिय आई । सो अब कथा कहो समुझाई ॥
पुहुप द्वीप जहाँ पुरुष रहाई । अलोप दीप तासों कहि भाई॥
आस पास है छब्बिस दीपा । तहाँ पुरुष रहै अधर समीपा ॥
तीन दीपनको नाम बखानों । धर्मदास मनमों बिलछानों ॥
अजर द्वीप पुरुषके पासा । कुसुम दीप सतगुरु निवासा ॥
अमरदीप सुजन जन जाना । सुमन द्वीप अब कहौं बखाना॥
सहस्र नेत्र द्वीप सुनि लीजे । अलोक द्वीप सुनिके चितदीजे॥
कंचन दीप बखानों आई । कंचन दीप सुनो चितलाई ॥
सुरजन द्वीप कहौं सम्भारा । अजर द्वीप निर्मल उजियारा॥
हेत द्वीप सुनियो चितलाई । लवंग द्वीप द्वीप अति छाई ॥
अबहि निरक्षर कहिये द्वीपा । कमल द्वीप तहँ पुरुष समीपा॥
अंबु द्वीप बहुत उजियारा । सुरति द्वीप अब कहौं पसारा ॥
भिरत द्वीप सोही जन जानै । निग्रह द्वीप करै पहिचानै ॥
श्वेतद्वीप समझो हो ज्ञानी । निश्चित द्वीपमों जाय समानी॥
सुस्थिर द्वीप चित्त जो राखा । कीरति द्वीपकरे अभिलाषा ॥
अकृत द्वीप आहि उजियारा । अक्ष द्वीप मह शब्द पसारा ॥
द्वीपचंद्र मन कहौं अनन्दा । पतंग द्वीप उमगै रवि चन्दा ॥
कुरञ्च द्वीप धर्मनि लघु जानो । सताइस द्वीपके नाम बखानो ॥

साखी-इतने द्वीपक गुप्त हैं, कोइ न जानत नांव ।
कहैं कबीर धर्म दाससों, सोई ठांव लखाव ॥

चौपाई

धर्मदास तुम सबै विचारा । सार शब्द नाहिं अनुसारा ॥
जब लगि सार शब्द नहिं होई । तौ जिय केता जन्म बिगोई ॥
काम कपाल भोज बसु नारी । सो साधू जिन नाम सँभारी ॥

इकोत्तरसे पुरुष तर जाई । इहि विधि रहन गहे चितलाई॥
नारि पराई चित मन देही । जन्म सात कुष्ठी कर लेही ॥
नारि पराई अंग छुवावे । कशमल लगै तत्त्व घटि जावे॥
लाख वर्ष रहैं भूतकी खानी । भुगते नर्क घोर सो प्रानी ॥
बिना शब्द जो भुगतहि नारी । तो सब परै कालकी बारी ॥
बिना शब्द निरञ्जन लीन्हाँ । ताने पुरुष माथ पुनि छीन्हाँ॥
नर्कहिकी कहा बात जु कहिये । सुर नर सबै काम वश रहिये॥
धर्मदास सुनि लीजे हमसों । उत्पति सकल कही हम तुमसों॥
राजा युग घिर पास में गहिऊ। बालकरूप तहां पुनि रहिऊ ॥
घरन कुमार तासकी रानी । प्रीतभाव बहु सेवा ठानी ॥
पुत्र भाव उन हमकह जाना । कपट भाव नहिं तजौं निदाना॥
दान पुण्य वे बहुतहि करहीं । राज गुमान गर्व अति धरहीं ॥
शब्द हमार नहीं उन चीन्हाँ । कुंजर देह जायसों लीन्हाँ ॥
कनक सिंह तिनके सुत कहिये । राज तिलक उनके शिर रहिये॥
भाग्यवन्त भयेऊ बड़ राजा । पिता पीड करही सब साजा ॥
बहुतक दिवस तहां चलि गयऊ। एक दिवस कौतुक अस भयऊ॥
आधी रात बीति गइ जबही । राजा स्वप्न दीन्ह पुनि तबही ॥
कुंजर देह धरैं तब आवा । कनक सिंह कहँ स्वप्न जनावा ॥
अहो पुत्र सुनु वचन हमारा । यहि घर आय तू सिरजनहारा॥
भ्रातारूप उन्हें जिनि जानो । सतगुरु आप लेव परमानो ॥
जब तुम भक्ति करो चितलाई। कुंजर देह छूटि मम जाई ॥
चटपट परत राति नियरानी । मीन करत जो पानी पानी ॥
प्रात आइ पद शीश लगाऊँ । हम नहिं चीन्ह तुम्हारा भाऊँ॥
चूक परी हमसे गुरु साँई । मरम तुम्हार चीन्ह नहिं पाई ॥
भ्रातारूप हम तुम कह जाना । तुम तो ब्रह्म आहु निरवाना ॥

पिता हमार कुंजरहि भयऊ । आधी रात खबर मोहि दयऊ॥
क्षमा अपराध कीजिये स्वामी । कृपा सिंधु हो अंतरयामी ॥
साहब दया करो अति भारी । सकल जीव है शरण तुम्हारी॥
दाया करि दीजे वर सोई । जाते आवागमन न होई ॥
जिहिमो होय मोर निस्तारी । सो प्रभु करिहो तब बलिहारी॥
तब हम उनपर दाया कीन्हा । संधिक नाम उनहि कह दीन्हा॥
विधिपर भक्त कीन्ह चितलाई । धनकर मनकर तनकर भाई ॥
सतरहसै रानी परवाना । कर्मनि काहु कहा नहिं माना ॥
कइक उहागिल हती जो रानी । सो उठि चली शब्द पहिचानी॥
सकल रूप कर चली सिंगारा । भक्ति हेत कारन पग धारा ॥
लीलावती नाम तिहि केरा । सो हम जीवन कीन्ह उबेरा ॥
सोरह रानी सत्रहो राजा । पहुँचे लोकहि पुरुष समाजा ॥
सोई कथा कुंजर मो आई । धर्मदास परखो चित लाई ॥

साखी--यह गुन ज्ञान स्थितिहिके, सेव शब्द निजसार ।
या विधि हंस करनी करै, उतरै भवजल पार ॥

सेजको शब्द

साखी—अक्षय नामके सेजपर, हंसा पारस दीन्ह ।
कालमें यम लूटिके, हंस आपन कर लीन्ह ॥

अक्षय सुख सेज आदी बानी । जापर हंसा पारस आनी ॥

साखी--जो हंसा पारस परसि, कहे कबीर सत बोल ।
ताकहँ चोर डहके नहीं, युग २ आहि अमोल ॥
ते हंसागये अमर लोककहँ,अक्षय अंक हमपारसलीन्ह।
कहै कबीर सतलोक बैठिकर; जीमें चीन्होती दीन्ह ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास चित सेवा ठाने । दोइ कर जोरि चरण लपटाने ॥

कठिन भेद साहेब तुम कहेऊ । जीवन मर्म न काहू लहेऊ ॥
ब्रह्मा विष्णु शंकर मिलि भाई । अलख निरंजन ध्यान लगाई॥
सुर नर मुनिकी कौन चलावै । पचि २ मरै पार नहिं पावै ॥
तवन भेद साहेब मोहि दीन्हाँ । हंस उबारि लोक कहँ लीन्हाँ ॥
अब प्रभु मोही कृतारथ कीजै । लोक दिखाय दरस प्रभु दीजै॥
यही देहसों लोक दिखाओ । हे दयाल मम तृषा बुझावो ॥
चित चकोर तब होइ अनंदा । दिखे अघाइ लोक सुठि चंदा ॥

साखी–धर्मदास विनती करैं साहब सुनो चितलाय ।
जबही मम संतोष होई, पूरुष दर्श दिखाइ ॥

चौपाई

सद्गुरु वचन

तब साहेब कहि वचन प्रमाना । धर्मदास तुम मन पतियाना ॥
तुम जग पंथ चलावहु जाई । हमकह चिह्न पुरुषकह पाई ॥
हमहि पुरुष कछु अंतर नाहीं । सुरती छाया संग रहाहीं ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास न्यौछावर कीन्हाँ । भये कृतारथ दर्शन दीन्हाँ ॥
अब साहब मोहि लोक दिखाऊ। तुमहि छांड़ि दूजा नहि भाऊ॥
बिनदेखे सुस्थिर नहिं होई । कृपा करहु निज राखो गोई ॥
जैसे कृपण द्रव्यकी आसा । बिन पाए बहु होवे त्रासा ॥
दरस करत तन तपत बुझाई । जैसे रंक महानिधि पाई ॥
बिन देखे व्याकुलचित भारी । पुत्र मरे जिमि मात दुखारी ॥
दरश बिना नाहीं चित लागा । हे प्रभु मोकहँ करहु सुभागा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भाल कीन्ह विचारा । अब तुम बचन सुनो टकसारा॥
काया अवधि पुरी जब आही । तब लेजाव पुरुषके पाही ॥

सुरति शब्द डोरी दृढ धरहू । छूटै देह तर्स तब करहू ॥
तब लगि पंथ चलावहु जाई । दृढता मानि करौ गुरुवाई ॥
मिथ्या वचन तुमहिसों करिहे । यमकी डगरि जाय सो परिहे॥

धर्मदास वचन

मूर्छित होइ चरण चित लागे ।जल बिन मीनप्राण जिमित्यागे॥
विन देखे नहिं होय अनन्दा । चिड़िया व्याकुल है अतिफन्दा॥
तुम साहेब अस बचन उचारा । कंप्यो जीव त्रास भवसारा ॥
हम दरशन विनु हैं अति चोरा। तुम प्रसाद हम पाइत वोरा ॥
अंतरध्यान भए प्रभु जवहीं । सात दिवस बीते पुनि तबहीं ॥
सात दिवस लग अन्न न पाया। कबीर कबीर ध्यान मन लाया॥
सद्गुरु दया करी चित लाई । कच्छ देशते तब चलि आई ॥
कच्छ देश जब कीन्ह पयाना । अलीदास धोबी पहिचाना ॥
नाम पान ता कहँ समुझाई । धर्मदास कह आन जगाई ॥
छोड़हु हठ चित शब्द विचारौ। पंथ चलावहु हंस उबारौ ॥
जीवन अपनी बाँह चलावो । दै परवान हंस मुक्तावो ॥
तुम सब हंसनको सरदारा । जीव उबारि जाय दरबारा ॥
देही सहित जान तुम चाहौ । देह धरे कैसे निर्बाहौ ॥
लोक बैठि तब करिहौ राजी । काग कालकी टोरहु बाजी ॥
अपनी संशय तुम मत धरहू । जीव उबारनकी सुधि करहू ॥

साखी–देह धरेका यह गुण, देहसहित नहिं जाव ।
सुखसागर तबहींमिलै, सुरति शब्द लौलाव ॥

चौपाई

धर्मदास उठि विनती कीन्हां । नामसंधि साहब मोहि दीन्हां॥
लोक दीपकी सुनी बडाई । ताते दरश परश चित लाई ॥
जब लगि नाहीं देखौ नैना । तब लगि नहिं पतियाहूँ बैना॥

अन्तर ध्यान बहुरि प्रभु भयऊ। धर्मदास बिलखत मन भयऊ॥
रुदन करत फिरै बिलखाता। कहुँ ना देखे साहब गाता॥
मोहि अपराधी कस प्रभु छांड़ा। विरह ज्वाल जरही मन भांड़ा॥
हौं अपराधि करम कर हीना। साहेब तरस परे नहिं चीन्हा॥
बिन देखे नहिं जियत न आऊँ। गुरुचरणामृत बिन पछताऊँ॥
अपना दास दास प्रभु कीन्हां। अग्रिम पदारथ हम कह दीन्हां॥
अब साहेब मोहि दर्शन देहू। तुम बिन कासो करब सनेहू॥
दिवस आठ अन्नहि बिन बीता। बिना कबीर जीव नहिं जीता॥
या विधि बारह दिन हो गयहू। तब साहब फिर दर्शन दियहू॥

साखी—सजिव भये निर्जीवते, अति अनन्द उर बाढ़ि।
धर्मदास मन हर्ष भा, सुख अनन्द हिय गाढ़ि॥

चौपाई

धर्मदास बिनती तब लाई। इतने दिवस दरस बिन जाई॥
हम तो भ्रमर कमलके बासी। जल बिन मीन सुरतिज्यों प्यासी॥

सद्गुरु वचन

तब साहब अस भाखब बैना। अब तुम देखो अपने नैना॥
देखहु धर्म निरूप हमारा। हमही छांड़ और चित धारा॥
हिरिणिरूप धरो प्रभु तबहीं। कोटिन भानु छिपाने जबहीं॥
येहि रूप है आदि हमारा। हठ निग्रह जिन करब बिचारा॥
जब तुम इतना कीन्हा उपासा। तब कह दरस पाइ हम पासा॥

धर्मदास वचन

भये कृतारथ दर्शन लीन्हा। धर्मदास न्यौछावर कीन्हा॥
बहुरि दास उठि पायन परही। चरण टेक बिनती अनुसरही॥
जबसे पावब नाम तुम्हारा। तबसे सुनब लोक व्यवहारा॥
अब मनसों अभिलाखा येही। लोक दिखावहु पुरुष विदेही॥

मो कह लेहि चलौ प्रभु तहवां । सत्य लोक पूरुषही जहवां ॥
बिन परिचय नहिं मन पतियाई। बिन दर्शन नहिं सुरति दृढ़ाई॥
तुम प्रसाद पाइब मैं भेदा । अब परसौ चित अमृत केदा ॥
सत्यलोक परसौं उजियारी । मैं अब बलि २ जाऊँ तिहारी॥

साखी—यम बंधन सब काटिकै, हंस लगावहु तीर ।
धन्य भाग्य वा हंसकै, कहि नाम कबीर ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

तब साहब चित पाया आई । चलहुँ वेग मैं दर्श दिखाई ॥
प्रथमहि करौं नासिका वारी । फिर रक्षा मन है रखवारी ॥
पैठै नाहीं काल शरीरा । बहुरि कठिन होवे तब पीरा ॥
जब तुम करहू अग्र सनेहा । शब्द संधिसौं राखो नेहा ॥
उन सुन कर पवनहि अवराधौ। उलटे ते सुलटा करि साधौ ॥
सोहं सोहं होइ सवारा । छोडहु देह चलो दरबारा ॥
चले जो हंस पवनके तेजा । पहुँचे निमिष मांह जहां सेजा ॥
पलँग साठ राह हम कीन्हां । साहिब खैंचि पलकमों लीन्हां ॥
राह माह एक नाचहि दूता । शब्द बान मारेय अजगूता ॥
छिनमें साहब लैगये तहँवा । पुहुप दीप पूरुष रह जहँवा ॥
सुरजन पीप जाइ भे ठाढ़े । देखत दरस हरष अति बाढ़े ॥
धर्मदास सत बिनती कीन्हीं । साहब सुरति घटहिमों चीन्ही ॥
लेकर सुररति चले पुनि तहां । हंस सुजन बैठे जहां ॥
करी प्रणाम दण्डवत कीन्हां । हंसन कुशल पूछि सब लीन्हां ॥
केहि विधि तुम रक्षा मन आयहु। कौन शब्दसों अमृत पायहु ॥
यमको जोर पहुँचत है प्रचण्डा । कैसे कढ़ि आये नव खण्डा ॥
कौन प्रसाद पाय तुम भाई । कौन वस्तु बल इहवां आई ॥
पिछली सुरति कछू तुम आनो । रक्षा हंस आप कह जानो ॥

धर्मदास तब वचन प्रकाशा । आये इह कबीरकी आशा ॥
नाम संधि उन मोहि दृढाई । तिहि प्रसाद सेवा तुम पाई ॥
आरतीकर परवाना पावा । काल फाँस सबहीय नशावा ॥
सुरति निरति भूल गये जब ही । भवसागरमों ठाढे तब ही ॥

साखी–लोक वेद सब भूलिहू, भूला आपनु भाव ।
बलिहारी सतगुरुनकी, जो ल्याये इहि ठाव ॥

चौपाई

तबहि सुजन जन पूछी बाता । कहिव कहा है हमरे भ्राता ॥
तुमरे दीप माँहि वे ठाढे । हम पूरन उनहीके बाढे ॥
तब सुरजन जन आये तहँवा । आइ कबीर बैठे हैं जहँवा ॥
चरण लगाइ अंकमहँ लीन्हां । भले गुसाँई दर्शन दीन्हां ॥
सिंहासन साहब बैठारी । सुरजन हंस विराजे भारी ॥
आज्ञा साहब दीन्ही जबही । धर्मदास ठाढे भये तब ही ॥
पुरुषहि तबहि वचन उचारा । सुकृत अंश लावो सठिहारा ॥
आरति साजि हंस सब आये । चलिए सुकृत पुरुष बुलाये ॥
तब सुकृत चित आये तहँवा । पुहुपदीप पुरुष रहि जहँवा ॥
पुहुपदीप नहिं बरनो जाई । जगमगज्योति सदा अधिकाई ॥
दामिनि दमक होय अति भारी । कोटिन भानु जाय तहाँ वारी ॥
हंस जाय तहां करैं अनन्दा । कालजाल व्यापै नहि फन्दा ॥
पंख वेहु नभचर तहां फिरही । अगिन वेहुते दीपक जरही ॥
बिन करताल मृदंग जो बाजे । चित्र विचित्र बीन कर छाजे ॥
बीना सुर तहाँ शब्द पुकारा । बीना श्रवण सुनत झनकारा ॥
बिना नालके कमल अनूपा । तामध्ये है पुरुष स्वरूपा ॥
करतहि दरश हरष उर आनी । सतगुरुवचन सत्य कर मानी ॥

साखी–अति अनंद उर ऊपजो, बाजत अनहद तूर ।
हीरा लाल मणि जग मगे, अमृत शोभा भरपूर ॥

चौपाई

धर्मदास मन भये अनन्दा । जिमिरविदरश फूलि अरविंदा॥
शोभा दरश हरष अति भाऊ ।उभय सुरखगतिबरणि न जाऊ॥
तब सुरजन जन जाइ जनावा । साहेब धर्मदास यह आवा ॥
इच्छा अधिक करे दर्शनको । पुरुष चरण हियमो परसनको॥
ये दोइ रूप तुमहि उतपानी । सद्गुरु सुकृते नाम बखानी ॥
तब ही पुरुष बचन फरमाया । सुरजन हंस जबै बुलवाया ॥
लेहु बेगि सुकृत तुम अंशा । पुरुष दरश करीब निःशंसा ॥
दंडवत अष्टांगहि कीन्हाँ । धर्मदास आगे पग दीन्हाँ ॥
पायर दीप ठाढ़ भै जब ही ।अमृतकला देखत भै तब तब ही॥
पर धर्मदास हि मुरझाई । देखि रूप अब मति अधिकाई॥
कोटिन कला सूर्य औ चन्दा । हीरा रतन गिनै को गन्दा ॥
जगमगज्योति अधिक तहाँ राजे। चितवनदृष्टि डगत गुनराजे ॥
दृग संपुट अंबुज सम आही । दरशहरशछबिहियइ अघाही॥
आनन्दरूप मूरछा आई । तब सुरजन तन कीन्ह उठाई ॥
सुचित चित्त होऊ धर्मदासा । आभारूप करि शब्द निवासा॥
उठिकर बाह निछावर करही । शीश नवाय चरण रज धरही ॥
दंड प्रणाम कीन्ह बहुभांती । सीप अघाइ पाइ जिमि स्वाती॥
तबहि पुरुष अस आसन दीन्हाँ । शब्द सहाय हमही तुम चीन्हाँ॥
तब सुरजन जन बचन उचारा । सुकृत अंश कीन्ह दीदारा ॥
पुरुष दीन सिंहासन टारी । हंसहिरम्मर बैठो झारी ॥
पुरुष तबहि यह वचन उचारा । केहिके अंग आहि दरबारा ॥
धर्मदास कैसे तुम आये । को वहियां जिनधरि पहुँचाये ॥
काहेके बल कालहि जीता । कौन शब्दसे राखब प्रीता ॥
तब सुकृत बिनती अनुसारी । साहब बचन प्रीति उर धारी ॥

ज्ञानी अंश शब्द मोहि दीन्हा । उनकी बाँह गौन हम कीन्हा ॥
करता देत छेकि जब बाटा । शब्द बाँह श्रोता कह काटा ॥
कालहि जीति अंशले आवा । उनकी बाँह दरस हम पावा ॥
सुरजन अंश वचन उचारा । सुकृतघटमें कवि सम्हारा ॥
देखहुँ लोकहि दृष्टि पसारी । ज्ञानी अंश कहां अनुसारी ॥
कौन दीप कहवाँ अस्थाना । कौन रूप ज्ञानी कर जाना ॥
धर्मदास घट कीन्ह विचारा । पुरुष वचन दृष्टि उजियारा ॥
लोक दीप देखो सब ठावा । ज्ञानी अंश नजर नहिं आवा ॥

साखी–लोक दीप सब देखिया, अंश नजर नहिं आय ।
पुरुष कबीर घट एकहै, दूजा नहीं लखाय ॥

चौपाई

धर्मदास दुविधा बिलगाना । पुरुष कबीर एक पहिचाना ॥
रूप रेख सब एकहि देखा । दूजा भाव अन्य नहिं लेखा ॥
धर्मदास तब चकृत भयऊ । पुरुष कबीर एकही भयऊ ॥
कीन्ह बन्दगी शीस नवाई । क्षमा अपराध कीजिये साँई ॥
तुम प्रभु आप अवसर नहिं कोई। बकसहु चूकि मोर कछु होई ॥
ब्रह्म अखंडित अन्तर्यामी । कृपासिंधु प्रभु पूरण स्वामी ॥
लज्जावान अविगति अविनाशी। लोक दीप सब कीन्ह प्रकाशी॥

पुरुष वचन

धर्मदास तोहि दाया कीन्हाँ । अवगति रूपदरश हम दीन्हाँ॥
ये दोइ कला भिन्न नहिं जानो । पुरुष कबीर एक पहिचानो ॥
एक रूप हम हंस उबारा । एक रूप त्रैलोक मझारा ॥
तुम्हरे शिर जीवनको भारा । भवसागरके तुम कढ़ियारा ॥
यासे परखो दीन्ह बताई । यह रमती घट देवरि गाई ॥
जो तुमरे घटते नाहिं जाती । तो सब जीवन माँह समाती ॥

यह दुरमत मनमहँ जो धरही । फिर २ भवसागरमों परही ॥
पुरुष कबीर एक जिन जाना । हंस हमारा सोइ पहिचाना ॥
के काल निकट नहिं आई । नाम कबीर कहो चितलाई ॥

साखी–अब तुम जाइब जगतमें, हंसन करो उबार ।
हंसराज तुम अंश मम, भुगवो सुखहि अपार ॥
प्रलयकालके अंतमें, जीव जन्तु सब तार ।
दरस परस सब मिलि करे, अस्थिर रूप अपार ॥

चौपाई

पुरुष रूपसे ज्योति निकारा । नाम कबीर देह तब धारा ॥
धर्मदास ढिग बैठे आई । जौन रूप धरि गये लेवाई ॥
चीन्हो सुकृत रूप हमारा । अब तुम घटमें भव उजियारा ॥
चलहु बेगि जिन लावहु बारा । जीवनाथ देव टकसारा ॥
चले सुकृत तबही शिरनाई । ज्ञानी लीन्हे संग लगाई ॥
निमिष एक नहिं लागी बारा । पहुँचे सहज शून्य मझधारा ॥
धर्मदासकी काया जहँवां । पहुँचे ज्ञानी आये तहँवां ॥
चारी दूत देह ढिग आवा । पैठन केर उपाय लगावा ॥
घटमें पइठि देह ले जाऊ । धर्मदास फिर कहँवां आऊ ॥
साहब शब्द बानसे मारा । दूतहि मारि हंस पैठारा ॥
धर्मदास कहा महँ जागा । रोम २ आनंद बहु पागा ॥
गुरु कबीर कह निज कर चीन्हा । तन मन धन न्योछावर कीन्हा ॥
बहुत अनन्द कीन्ह गृह मांहीं । चरण शरण मन लीन्ह सदांहीं ॥

साखी–यह गुण ज्ञान स्थितहिके, कहैं कबीर विचार ।
धर्मदास दीदार करि, आए जगत मँझार ॥

चौपाई

धर्मदास हियमें अति हर्षे । गद्गद गिरा नैन जल वर्षे ॥

मम हिय तिमिर आहि अधियारा। महर पतंग कीन्ही उजियारा॥
मन अहि तपत कबहुँ नहिं धीर । वचन अंग शीतलमलयागीर॥
तेहिपर सत त्रिय ताप बुझानी । अमी असन त्रियत्रिपतअघानी॥
पायउ दरश कृतारथ आजू । दरसन देखेव हंस समाजू ॥
अब गुरु मोकहँ देव लखाई । पुहुप द्वीप कैसे निरमाई ॥
अंबुद्वीप कौन विधि भयऊ । धर्मराज कैसे निर्मयऊ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास पूछी भलबानी । सो सब कथा कहौ बिलछानी॥
पुरुष विदेही देह निमासा । श्वासा सारते पुहुप प्रकाशा ॥
सत्रह शंख पंखुरी कीन्हाँ । ताहि मध्य वासा प्रभु लीन्हाँ॥
अंबुदीप तबही जो कीन्हाँ । सहज पुत्र कह बैठक दीन्हाँ ॥
सवा शंख पँखुरी राजै । जग मग शोभा तहां विराजै ॥
आठ पुत्र तहँसे उतपानी । तिनसों आठों सिद्धि बखानी ॥
जोति सरूपी पाया आई । ज्योति रूपके काल बनाई ॥
उतपत करै प्रलय संहारा । तउना उपजै काल अहारा ॥
सहज धर्मसों गुण परकासा । ज्योति सरूपीज्योति निवासा॥
धर्मरायको बल परकाशा । माया जाल जीव सब फाँसा ॥
आपुन रहियब सुन्नी मझारा । वहाँ बैठि सब कीन्ह पसारा ॥
पुहुप दीप आवन नहिं पावा । जानै साहब नाहिं रहावा ॥
धर्मराय माया उपजाई । ज्योति स्वरूप जीव अरुझाई ॥

साखी–पुरुष पार नाहीं लहेउ, अटके ज्योतिहि मूर्ति ।
ज्योति भई है प्रकृतितें, प्रकृति बनी है मूर्ति ॥

चौपाई

इह कारण वह दीप सम्हारा । धर्मनि पाव वही बैठारा ॥
पुहुप दीप जब सिरजन लीन्हाँ। समसर पवन वास तहँ कीन्हाँ॥

ज्योति ओट यह बोलत बानी । सबको जानै पुरुष निसानी ॥
काल दुष्ट जीवन छलि राखा । ज्योतिहिओट वचन मुख भाखा॥
उत्पति प्रलय याहिसों भयऊ । भूल भुलाय सबनको दयऊ ॥
पुहुप दीपको सुमिरन करई । ज्योति स्वरूप नहिं सो परई॥

साखी—इह गुन ज्ञानस्थितहिके, पुहुपदीप अनुसार ।
एहि दीप बासा करै, आवा गवन निवार ॥

चौपाई

पुहुप दीपमें समसर कीन्हाँ ।समसर पवन श्वास तहाँ लीन्हाँ॥
अमर वासना येही आई । इहँहि बैठि सब करी कथा है ॥
थाह न जानत मूढ़ गवाँरा । लुब्ध रहेव जयमाल पसारा ॥
पुहुपदीपको सब दीप निवासा । जहाँ वह पारब्रह्मकर बासा ॥
येहि शब्द तुम लेव बिचारी । पुहुप दीप कीन्हां बहु बारी ॥
पुहुपदीप दीपनमें सारा । जो बूझे सो उतरहि पारा ॥

साखी—येहि सुरति ले राखहु, पुहुप दीपके पास ।
सत्य पुरुष जहाँ आप है, अमृत सिंधु निवास ॥

चौपाई

तहँको हंस करहिं पैठारा । जब मिलि हैं सद्गुरु कड़हारा॥
हंस जाय पुरुषहिं दरबारा । अविचलनामकोमरहि सम्हारा॥
सत्य कमलपर बैठक दीन्हा । बैठे हंस अतिहिं सुख लीन्हा ॥
सुधा अहार अमर भै काया ।आदि नाम अविचल मन भाया॥
कोटिन कोटि दंडवत लीन्हा ।धनि सत्य सुकृत नामजो दीन्हा॥
पुरुष शब्दजिनि आपु बतावा । आवा गौन रहित घर पावा ॥

साखी—येहि गुण ज्ञान स्थितिहिके, पुहुप दीप निजु बास ।
कहे कबीर वह शब्द गुन, हंसा करहि विलास ॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब सेवा ठानी । सुरति भेद पूछनको आनी ॥

सो सद्गुरु मोहि कहो बखानी । जासो आदि अन्त पहिचानी ॥
जौन सुरति साहब तुम साधी । सो मोहि कहिये मिटत उपाधी ॥
जेहि सुरति प्रथम जो आईं । वही सुरति मिलि सबको थाहैं ॥
बिना सुरति नहिं गुरुको पाही । बिना सुरति नहिं लोकै जाई ॥
सुरति होइ तब ज्ञान उचारे । सुरति होय तब ध्यान सम्हारे ॥
सुरतिहि पैठि पवन को गहैं । बिना सुरति वह प्राणी डहैं ॥
सुरति होइ तब अगम जानी । भला बुरा सबही पहिचानी ॥
बहिनभानजी सुरतिहिजानी । माता पुत्री सुरति बखानी ॥
मोह न नारि सुरति कहँ देखौ । धर्म पाप सब सुरति बिसेखौ ॥

साखी--जो कुछु है सो सुरति है, साहब दे बतलाय ।
सुरति भाव जब चीन्हि है, तब हंसा घर जाय ॥

सद्गुरु वचन

तब सद्गुरु अस वचन उचारा । धर्मदास पूछब मत सारा ॥
बिना सुरति पुनि कछु अनपाई। सुरति बिहूँ नहिं आवहि जाई ॥
सो अब तुमसों कहों बुझाई । सात सुरति सब देव लखाई ॥
पुरुष सुरति आपहि उपराजा ।विहँगसुरतिप्रथमहि किय साजा ॥
बीस आठ प्रकृति जो कीन्हाँ । जो जनमें तस भुगते लीन्हा ॥
जैसे योग मनहिं रहाई । तैसे बुद्धि शरीरहि सोई ॥
प्रथम कहौं अब सुरति बिचारी। पुरुष एक उत्पन किय नारी ॥
जेठी सुरति तबहि उचारी । चारहु लोक कीन्ह बिस्तारी ॥
विहँग सुरति ताही सो कहिए । ब्रह्म सुरति मूल वह लहिए ॥
निरति सुरति ये स्थूलहि छाजा। हरषत सुरति विदेही साजा ॥
बाढी सुरति नाद गुन गहै । धीर सुरति नाद गुण गहैं ॥

साखी--सुरति पुरुष अंगहि बसी, फूट अंडके भाव ।
बीजमूल गुण प्रकट है, देखै ते सच पाव ॥

चौपाई

सुरति शब्द अब कहौं बखानी । धर्मदास लीजो पहिचानी ॥
सुरति शब्द भाखिब हम तुमसे। सुरति प्रसन्न होय तब हमसे ॥
सुरतिहि माहि रच्यो संसारा । सुरति करै तब उतरै पारा ॥
जेठो अंश सुरति जो आही । पुरुष संग वह सदा रहाही ॥
बिहंग सुरति पुरुष जब कीन्हाँ। रचाना सपत सोंप तब दीन्हाँ॥
अबही कहौं सुरती कर मूला । उपज्यो अग्र शब्दसो स्थूला॥
जबही पुरुष कीन्ह है इच्छा । तब इह प्रकट भई सब शिक्षा॥
सुरति शब्द पुरुषहि उपजाई । सुरति प्रसन्न लोभ रच आई ॥
सुरति निरति सुख देह अनन्दा।मेटत सुरति सकल दुख द्वंदा ॥
सुरति निरति जब एकै होई । तब साहेब कह देखे सोई ॥

साखी–कहैं कबीर वह सुरतिते, सब कछु भयो प्रकाश ।
शब्दहि सुरति बिहंग है, लीन्ह अग्रमो बास ॥

चौपाई

धर्मदास सुनियो चितलाई । घट भीतर लीजो निरताई ॥
सुरति रूप देखो निरधारा । मन बुद्धि चित्त पवनसे न्यारा॥
पाँच तत्त्वकी रचना येही । इनते सुरति जो आहि विदेही ॥
ब्रह्म अंगसे प्रकटी आई । तीनि अंग गुण कला धराई ॥
सत्यरूपसे सुरति बखानी । चेतन अंग निरति कहैं जानी ॥
आनंद सदन शब्द पहिचाना । सत्य सुकृत दोइ नाम बखाना॥
सुरति रूप चैतन्य समाई । चैतन रहित शब्द लौ लाई ॥
सुरति समुद्रहि मठी दुवारा । हंसा पैठि देखि निर्धारा ॥

साखी–कहै कबीरहि सुरति बल, अपने पुरुषहि देख ।
मन बुद्धि चित्त समेटि के, चेतनरूप विशेष ॥
अक्षय वृक्षकी सुरतिमें, हंसा लेहि बसेर ।
कहै कबीर लै निबहि है, जात न लागे बेर ॥

अचु दीपकी सुरतिपर, हंस होय असवार ।
कहैं कबीर लै निबहिहौं, कोटि बसें बटपार ॥
गृद्दान रोके नहीं, सुरति हंस लै जाय ।
कहैं कबीर यम हारियो, काल पैठि पछिताय ॥
इह गुण ज्ञान स्थितिहिके, गहे शब्द चितलाय ।
कहै कबीर यम हारिया, काल बैठि पछिताय ॥

धर्मदासवचन-चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । तुम साहब हम दास तुम्हारी ॥
गुरु शिष्यकी रहनी कैसी । सो समुझाय कहौ गुरु तैसी ॥
योग अयोग मोहि समुझावो । हे दयाल मम त्रिखा बुझावो ॥

सद्गुरु वचन

सद्गुरुवचनहि विहँसि उचारी । अगुण सगुण विच गुरू अवारी ॥
शिष्य पूछि गुरु भए उदासा । सो गुरु उठि आए धर्मदासा ॥
जिमि बालक रोवै बिल्लाई । मात पिता बहु बोध कराई ॥
येयाविधि गुरु शिष्य हैं सोई । जगमैं अमृत पीवैं वोई ॥
शिष्य सीप गुरु स्वाती जानो । गुरुपारस शिष्य लोह समानो ॥
गुरु मलयागिरि शिष्य भुजंगा । गुरु पारस शीतल होय अंगा ॥
गुरु समुद्र है शिष्य तरंगा । गुरु दीपक है शिष्य पतंगा ॥
शिष्य चकोर गुरु शशि जानौ । गुरुरविकमल शिष्यविकशानौ ॥
इह सनेह शिष्य निहचै लहई । गुरुपद परस दर्श हिय गहई ॥
जब शिष्ययाविधिध्यानविशेषा। सो वह सीख गुरू समलेखा ॥
गुरुन गुरुनमों भेद विचारा । गुरु गुरु कहै सकल संसारा ॥
गुरु सोई जिन शब्द लखाया । आवा गौन रहित दिखलाया ॥
गुरुहि सजीवन शब्द लखाया । जाके बल हंसा घर आया ॥
वा गुरुसो कछु अन्तर नाहीं । गुरु औ शिष्यमताएक आहीं ॥

साखी–गुरु शिष्य एके भए, भिन्न न कबहूं होय ।
दुर्मति दिलसो मारिकै, सुरति शब्द चित पोय ॥

धर्मदासवचन–चौपाई

धर्मदास तब बिनती कीन्हाँ । चरण पकरिके विन्ती लीन्हाँ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । केहिविधि उपजे सो कहि भेवा॥
चारि मुक्तिको भेद बतावो । सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावो ॥

सतगुरु वचन

सद्‌गुरु वचन बिहसि कर बोले । मुक्ति भेद कहुँ परदा खोले ॥
आदिहि पुरुष निरञ्जन कीन्हाँ । माया आदि ताहि कह दीन्हाँ॥
तिहि संयोग भये त्रिय वारी । ब्रह्मा विष्णु महेश विचारी ॥
चार मुक्तिके वे हैं राजा । पँचइ मुक्ति भिन्न उपराजा ॥
प्रथम मुक्ति सालोक बताई । मारग वाम ताहि कर आई ॥
दूजी मुक्ति समीप कहावा । निर्वाण मार्ग हो ताकहँ पावा॥
तीसरि मुक्ति स्वरूप बखानी । अघोर मार्गही ताकर जानी ॥
चौथी मुक्ति कहिये सायोजा । सर्भंग मार्ग कलमा पढ़ रोजा ॥
चारों मुक्ति निरञ्जन लीन्हाँ । तिनके बसहि जीव सबकीन्हाँ ॥
अब सुन पांचइ मुक्ति विचारा । धर्मदास परखो मतसारा ॥
जीवनमुक्ति दरस तब लहये । मृतकदसा होय नामहि गहिये॥
सत्य वचन मुखसो उच्चरई । नाम सार हृदये महँ धरई ॥
नियम धर्म षटकर्म अचारा । त्रिगुण फंदसों रहै निन्यारा ॥
सुरति निरति नामसों राखै । सद्गुरु वचन सत्यकर भाखै ॥
लोभ मोहसों रह निह न्यारा । करम क्रोधते आप उबारा ॥
दुख सुखकी कछु संशय नाहीं । पाप पुण्य नाहीं चित माहीं ॥
अरथ द्रव्य मिथ्याकर मानै । जीवन जन्म नाम पहिचानै ॥
दया क्षमा कुल टूट कहावा । विषमें हरषन चितमें लावा ॥

सो जिव उतरहि भवजल पारा । जो यह चाल चलै निर्धारा ॥
अर्ध ऊर्धका करहि विचारा । सत्यनाम हृदये महँधारा ॥
उलटि कमल सुलटा जब करई। मनहि समेटि सुरति चित धरई॥
समसर पवन योगि कह तारै । पवन डोरि स्वासा निरुवारै ॥
सोहं तार घडहिमें देखे । स्वेत भँवर गहि शब्द विशेषे॥
भँवर गुफामहँ जगमग जोती । वा घर बरषै माणिक मोती ॥
निहकार्मी निरवानी जानी । निहरूपी निश्चितहि बखानी ॥

साखी–आदि सुहंग बखानऊ, स्वर्ग पताल भरि ठौर ।
कहै कबीर धर्मदाससों, वही हंस शिरमौर ॥

चौपाई

सुरहि कमल याजीकर छोरा । सुरति करै तब देखि निहोरा ।
ऐसी सुरति निरति मन राखे । सांचे दरश पुरुषके भाखें ॥
जबही दरश परश पुनि होवै । जन्म जन्मके कश्मल धोवै ॥
जीवन मुक्ति होइ पुनि तबही । संधिक नाम आव घट तबही ॥
कागरूप सब चाल मिटाई । गुरुप्रसाद हंस गति पाई ॥
निर्मल जीव हंसगति भयऊ । नाम संधि हृदयेमहँ लहेऊ ॥
वंश प्रताप साँचकर चीन्हा । नाम सार अमृतरस लीन्हाँ ॥
जीवनमुक्ति देहमहँ पाई । हिम्मर रूप धरे सो आई ॥
जाती बरन पलटे सब अंगी । सद्गुरु साँचे मिलि बहुरंगी ॥

साखी–मलयागिरकी वास ज्यो, दीपक ज्योति पतंग ।
पारस छुइ कंचन भया, स्वाति सीपके संग ॥

चौपाई

स्वाती सीप नाम मिटि दोई । मुक्ता हल तेहि कह सब कोई॥

धर्मदास वचन

धर्मदास गुरु चरण न परई । शीश नवाय दण्डवत करई ॥
धन्यभाग्य दर्शन प्रभु दीन्हौं । अधम जीव पावन कर लीन्हौं॥

साहब दया दास पर कीजै । विदेह मुक्ति कर भेद जो दीजै॥
विदेह मुक्ति किम देह समाई । कौन भांति हंसा लखि पाई ॥
छुच्छी नदी रैन अति भारी ।सलिलप्यासकिम मिटे दुखारी॥
पाँचो तत्त्व पाँच गति संगा । त्रिगुणफंद जीव यह रंगा ॥
नऊ नाटीक कहे घटमाहीं । स्वासारूप जीव सँग ताहीं ॥
मनकी कला अनेक पसारा । काम क्रोध तृष्णा अधिकारा ॥
लोभ मोह चिन्ता अतिभारी । जड़ता गर्भ कुटिल विस्तारी ॥
इनके संग काग गति पाई । हंसवरण किमि होय गोसाँई ॥
यही अंग मन चितवन कीन्हाँ ।केहिविधि साहब तुम कह चीन्हाँ॥

साखी-धर्मदास विनती करै, साहब बंधन छोर ।
सब अंगमें भरि रहै, विदेह अंगको चोर ॥

सद्गुरु वचन

सद्गुरु वचन सुनो धर्मदासा । अगम भेद तोहि कहौं प्रकाशा॥
विदेहमुक्ति तुम पूछिव आई । सो सब कथा कहो समुझाई ॥
पुरुष विदेह कमलमों रहेऊ । सुरति विदेह शब्द जौं ठयऊ॥
लोक दीप सब सुरतिहिं कीन्हाँ। तेहि पाछे मन उत्पन कीन्हों ॥
विदेह मुक्तिकी डोरी चीन्हाँ । शब्द सुरतिके हाथहि दीन्हाँ ॥
मनहिं समेटि सुरति पहिचानी । सुरति जाय तब शब्द समानी॥
शब्द सुरतिकर बांधो भेला । भवसागरसे दीन्हों हेला ॥
शब्द विदेह गुरूकर बासा । सुरतिस्वरूपी शिष्य निवासा॥
सुरति शब्दमें लीन्हो बासा । सुरतिस्वरूपी शिष्य निवासा॥
मायाजाल कृत्रिम सब लेखो । अग्रझलक नैननमें देखो ॥
कूप झांकि हो वचन विदेही । अग्री जार उठावे सेही ॥
अग्र शब्द तबही लखि पावे । मृतक दिशा हो सुरति समावै॥
शीतल तपत स्वाद नहिं जाने । जन्म मरण शंका नहिं आने ॥

चलते फिरत वचन अस भाखा । चेत अचेत बोध नहिं राखा ॥
पुत्री पिता बंधु नहिं जानै । माता बहिन नाहिं पहिचानै ॥
मोहि अभूषण धरै न अंगा । तृषा क्षुधा नहिं स्वाद उमंगा ॥
ऊंच नीचकी नाहिं बिचारी । धर्म अधर्म दोऊसे न्यारी ॥
दुख सुख सब एकहि करिजानी । विदेह अंग ऐसे पहिचानी ॥

साखी–काया सीप सम जानिये, स्वातिशब्द पट आन ।
परख नेह संपुट बँधौं, मुक्ताइल उतपान ॥

चौपाई

धर्मदास इह भेद विदेहा । इह धन धन्य और सब खेहा ॥
जस चकोर चंदा कह ताके । याविधि लिप्त नामके नाके ॥
कमलचक्र है मनको रूपा । स्वप्परूप भमित वह भूपा ॥
पाँच पचीस कठिन बिकारा । देह बीच इन राज पसारा ॥
सेमर फूल जस किरुवां आवा । देखि फूल बहु हरष बढ़ावा ॥
चुंगल गारत सुआ उड़ानो । रोम रोम मिथ्या कर जानो ॥
जाना नहीं विवेक बिचारा । ठोक कपार चलो झँखमारा ॥
मायारूप आहि इमि भाई । जिमि फुल सेमर सुन्दरताई ॥

साखी–नारीरूप नर देखिके, कूकर सम लिपटाय ।
विषय बासनाँ बँधि रहि, विदेहमुक्ति किमि पाव ॥

चौपाई

घरी घरी मन काम जगावै । ज्ञान भुलाय नाम बिसरावै ॥
स्वप्न माँहि सोई छल करई । गुप्तवासना हृदये धरई ॥
कूद कूपके अगिन मँझारा । राखै कौन जीव निजु सारा ॥
सम्मुख आय बाधके कोई । भक्षण यतन करै वह सोई ॥
रक्षक शब्द जाहि तन गाजै । उलटी काल तहाँसों भाजै ॥
यही शब्द घट राखि समाई । माया ताहि खान नहिं पाई ॥

सारवस्तु घटमों पहिचानौ । रोम रोम अस्थिर ठहरानौ ॥
काया सकल कालकी बारी । निसदिन ध्यान शब्द चितधारी ॥
देही सकल कालकी जानै । विदेह अंग आपहि पहिचानै ॥
देह विदेह नेह गुण जानै । आपा मेटि आदि गुण ठानै ॥
याविधि मनमों रहनी करई । आपा मेटि आदि गुण धरई ॥

साखी—कहैं कबीर वह आपहैं, नहिं सुमरन नहिं जाप ।
धर्मदास लिखि लीजियो, अकह अगोचर छाप ॥

चौपाई

अकह अंश जब कहत रहावा । पांचतत्त्व गुणतीन समावा ॥
चलत हँसत बोलत बहुबानी । आपुन राजा रंक समानी ॥
माता पिता घरणि घर कीन्हे । आपुहि योग भोग सब चीन्हे ॥
गृह निकरे पुत्रहिं उपजावै । अपहि षटकर्मन कह सावै ॥
भूख प्यास तृष्णा बहु सहिया । दुख सुखको संगीसोहिरहिया ॥
अर्थ द्रव्य सुमिरण सों राखै । मिथ्या सत्य आप मुख भाखै ॥
सुमिरण भजनआपही करई । अकला बै अकला संचरई ॥
भली बुरीको करत बिचारा । आपहि पाप पुण्य बिस्तारा ॥
कबहुक संत असंत कहावै । मनके भाव अनेक दिखावै ॥
आपही सेवा करै करावै । खीझै हँसे मनहि पछितावै ॥

साखी—आप आपही रमि रहो, आत्मरूप परवान ।
यासों रहित अपार है, परमातम सुस्थान ॥

चौपाई

तब साहब अस वचन उचारा । रहित मुक्ति सब इनसो न्यारा ॥
रहित भाव जो घटमें देखो । आवा गौन रहितई लेखो ॥
रहित पुरुष कह तबही पावै । अस्थिर ज्ञान चित्तमहँ लावै ॥

लिखे पढ़े नहिं पावे भाई। बिन सतगुरुको देइ लखाई ॥
प्रेमसुधारस तबही पावे। गुरु बहियां मिलि भेद लखावै॥
चित आनंद अस्थिर तब जानै। सुमिरन भजन नाम पहिचानै॥
मातु पिता सुत नारि पियारी। पुरजन जलसम रहनि विचारी ॥
नाम गोत्र तन शीतल कीन्हा। मिथ्या नारिपुत्र कुल चीन्हा ॥
भूखहि प्यास गई तन ताको। दुख औ सुखकी आस न जाको॥
अर्थ द्रव्य मिथ्या करि जानी। बुधकी बुधी रहित कर मानी ॥
भली बुरीकी नहीं विवेका। जहँ देखो तहँ आनंद पेखा ॥
पाप पुण्यकी संशय नाहीं। संत कुसंत रहित जो आहीं ॥
मन बुधि चितते रहे भुलाई। पांच पचीस राखि अरुझाई ॥
बैठे उठे दूजा नहिं आनै। उत्तम मन अमृतरस सानै ॥
मन अरु वचन रहित करि जानै। श्वासा बीज नाम धुनि तानै ॥
नयन नासिका रहित अनन्दा। उदित भए जनु पूरण चन्दा ॥
हाथ पांव इन्द्री बस कीन्हे। सूरय चन्द्र रहित घर चीन्हे ॥
जो देखे सो रहितै देखे। रहित अनन्द अवर नहिं पेखे ॥
सब गुण सहित रहन है ज्ञानी। रहित बिना है भेद दिवानी ॥
जब ही रहित आप वह कीन्हा। पुरुषहि समसर जो जिय चीन्हा॥
रहित शब्दमों है मतवाला। ताकहँ देखि मूछि रहि काला ॥
सुरति सम्हार नाम दृढ़ लीजे। नाम सुधारस भरि भरि पीजे ॥

साखी—इहगुण ज्ञानस्थितिहिको, रहित मुक्तिकर भेद।
कहे कबीर धर्मदाससों, नाम अमोलिक लेव।
रूप मगन मन हो रहो, अंग अंग सुखधाम।
जिमि मिसि कागद पत्रही, होत सुअक्षर नाम।

चौपाई

प्रेम पियाला कठिन रहाई। सत्यरूप धरि पीवे अघाई ॥

जिमि सत्ती सरकों चढि जावे । पिव कारण वह जीव गँवावे ॥
संसार कहे वह बोलत भाई । जरबर गई प्रेम निर्वाही ॥
जीवतही जिय पीयके संगा । माया भरम तजौ परसंगा ॥
जो कोइ होय हंस अंकूरी । नाम सनेह रहै परसंगा ॥
ज्यो पतंग दीपके कारन । जीवन आये अंग सब जारन॥
अंग विदेह येह अनुसरहीं । असनबसनीकी सुधि नहिं करहीं॥
कहत सुनत जिय तनमहँ डोलै । जीवन प्राण पवनसंग खेलै ॥

साखी-रहितहि मुक्ति कठिन है, कोइ न जानत भेद ।
शब्दहि सुरति समायके, हंसराज इह खेद ॥
जो जन पियके मद छकै, करै पियापिय पीव ।
पीव मिले हिलमिलि रहै, श्वास समानेउ जीव ॥

चौपाई

इश्कभाव है कठिन अपारा । बिरले जीवहि करै सम्हारा ॥
धर्मदास कहि सुनो गुसाई । कीन्ह कृतारथ मोकहँ आई ॥
सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावा । मनचञ्चल सुस्थिर ठहरावा ॥
कीन्ह कृतारथ मोकहँ आजू । बरनेव पुरुषहि हंस समाजू ॥
इह बरदान देहु मोहि स्वामी । कृपासिंधु गुरु अंतर्यामी ॥
चरणकमल उरसों नहिं टरही । पदपराग मनवासा धरही ॥
मन चञ्चल है कठिन कठोरा । कैसे प्रीति लगै गुरु बोरा ॥
सो समझाय देव मोहि भेदा । आदि अंत सब कीन्ह निषेदा ॥

साखी-तुम प्रभु दीनदयाल हौ, हम निज दास तुम्हार ।
भवसागरते काढिके; दीजै पार उतार ॥

चौपाई

धर्मदास निश्चय मोहि चीन्हा । तुमरे घट हम बासा लीन्हा ॥
जहँ लगि जीव जगतमें आही । ते सब उबरहि तुमरे बांही ॥

वंश बयालिस जंग औतारा । तेजहु है जीवन काढ़नहारा ॥
नाम विदेह अकह हम कीन्हाँ । सोई वंश हाथ करदीन्हाँ ॥
वचन हमार शब्द टकसारा । चूरामन तासे औतारा ॥
पुरुषहि अंश आहि निज सोई । शब्द अतीत नाम कहि सोई ॥
आदि नाम निरअक्षर जानौ । मुक्तामणि तिनको पहिचानौ ॥
उनसोंइ सकल गावे साँचा । सोई जीव कालसों बाँचा ॥
नहिं अक्षर नहिं आदिकि बानी । सोहंग तार पुरुषहि उतपानी ॥
इतनो भेद जानि है सोई । जो हंसा हि अंकुरी होई ॥
बिच्छू मंत्र जानि नहिं पावा । सर्पकी बाँबी हाथ समावा ॥
मुक्त न होय परे यमखानी । नरक वास औंधे मुख आनी ॥
प्रेम प्रीति जाने नहिं कोई । तासों गए बिगोइ बिगोई ॥
अक्षर इश्क आहि निज साँचा । जो चीन्हे सो परले बाँचा ॥

साखी–ज्ञानस्थितिके येह गुन, इश्क पुरुष निज बास ।
कहे कबीर धर्मदाससों, गाउ अक्षर विसवास ॥

चौपाई

सुर नर मुनि गण गंधर्व देवा । रहित पुरुष कर लखौ न भेवा ॥
धर्मदास सुनि प्रेम स्वभाऊ । शीस देइ तब प्रेम कहाऊ ॥
अब मैं कहौ मुक्तकर भाऊ । अक्षर मिलि है मुक्त प्रभाऊ ॥
जो देखे सो समझकर देखे । अक्षर बिना पुरुष नहिं पेखे ॥
भला बुरा सब समकर देखे । नर अरु नारि एककर लेखे ॥
पाप पुण्य शंका नहिं करई । दुख सुख दोऊ समकर धरई ॥
नर और नारि एकही घटमों । ज्यों कपास है सूतहि पटमों ॥
जल थल पवन अकास बखनौ । धर्म अधर्म एक करि जानौ ॥
पाँच पचीसो बधन करहीं । त्रयदश पाँच ताहिसों तरहीं ॥
रसना रसपति माया डारी । इच्छासंगम मन फटकारी ॥

नयन नासिका श्रवण तरंगा । जिह्वा इंद्रि करी एक संगा ॥
हाथ पाँव जीव सबमों वासा । पल २ छिन २ करहिं प्रकाशा॥
काया माँहि शब्द पहिचानौ । मिथ्या जग स्वप्नहि सब जानौ॥
लोभ मोह नाहिं चितधारा । निज अक्षरको करै सम्हारा ॥
अक्षर बहै शीसके माहीं । सो लखि आवे सतगुरु पाहीं ॥
उन मुनि करिकै अक्षर देखै । अक्षरमों निरअक्षर पेखै ॥
निरअक्षर है वस्तु अपारा । जो जाने सो उतरै पारा ॥
अक्षर निर अक्षर दूजा नाहीं । दूजा करै विगुरुचन ताहीं ॥
नाम संधि हृदये महँ राखै । अग्र विदेही अमृत चाखै ॥

साखी–ज्ञानस्थितिके येह गुण, सबविधि करै सहाव ।
मनुवा अस्थिर होइ रहे,पुरुषहि दरस कराव ॥
कहै कबीर धर्मदाससों, अक्षर सुमिरहु सार ।
निरअक्षरसो प्रीति करि, उतरहु भवजलपार ॥

चौपाई

धर्मदास तोहि भेद बताई । एहज्ञान काहू नहिं पाई ॥
बहुतक ग्रंथ तुम्हें समुझावा । ज्ञानस्थितसो गुप्त रहावा ॥
जब तुम कीन्हो खोज बहूता । तब एह भेद कहेब अजगूता ॥
जो यह ग्रंथ सुनै चित गहई । आवागौन तासु निर्बहई ॥
जो कोइ हंसहिहो अंकूरी । तासो भेद कहिब भरपूरी ॥
कपटरूप जाके तन होई । तासो वस्तु जो राखहु गोई ॥
येहि सिखावन पंथ चलावौ । भवसागर के जीव मुक्तावौ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनती अनुसारी । तारण तरण जाव बलिहारी ॥
अब एक इच्छा घटमों आई । सद्गुर भक्ति करौ चितलाई ॥
पान प्रमान हमहिं कह दीजे । दीन दयाल दया प्रभु कीजे ॥

संधिक नाम पाइ सुख होई । बिना छाप खातिर नहिं होई ॥
तब सतगुरुने साज मँगावा । कदली खम्भ आनि गडवावा॥
चौका सोरह सुतकी कीजे । मान सिखावन हमरी लीजै ॥
धर्मदास सोई बिधि कीन्हाँ । जो सद्गुरु कृपा करि दीन्हाँ ॥
सोरह हाथ सूत्र तनवाई । सोरह धोती आनि चढाई ॥
सोरह नरियल लै परवाना । लौंग इलाची धरि मिष्टाना ॥
मेवा अष्ट जुगुतिसो लाई । चौका चंदन कीन्ह बनाई ॥
बासन पांच धातुके धरिया । बांछा सहित गाय अनुसरिया ॥
आरति ज्योति कीन्ह परकाशा । बाजत शंख झाल तमनाशा ॥
धर्मदास औ आमिन आवा । सद्गुरु चरण हिये लव लावा ॥
चरण पखारि चरणामृत लीन्हों । तन मन धन न्योछावर कीन्हों ॥
षोडश शब्दहि कीन्ह उचारा । मोरत नरियर भौ उजियारा ॥
धर्मदास परवाना लीन्हाँ । शिरहि नवाय बंदगी कीन्हाँ ॥
तापीछे आमिन चलि आई । कीन्ह बंदगी शीस नवाई ॥
तब सद्गुरु दीन्हों परवाना । आमिन हिय बहु हरष समाना॥
धर्मदास गुरु बंदन कीन्हां । साहब शब्द नाम जो दीन्हां ॥
सम्वत पन्द्रहसो चालीसा । भादों शुक्ल पाँचदिन तीसा ॥
पूरणमासी पूरण जानौ । गुरुवासर शरणागति आनौ ॥
तब सद्गुरुने दीन्ह अशीसा । मुक्तिराज दीन्हो बखशीसा ॥
मुक्तामणि निज अंश हमारा । आमिनि घट लेहे औतारा ॥
उनके वंश बयालिस होई । जक्त जीव मुक्तावै सोई ॥

कहे कबीर धर्मदाससों, हम तुम दूजा नाहिं ।
शब्द विवेक विचार कर, जो देखा घटमाहिं ॥
शब्द सुरति औ निरति है, कहिबेको है तीन ।
निरति लौटि सुरतिहि मिली, सुरति शब्द लखिलीन ॥

गुरुशिष्य इमि जानिये, कहिये भिन्नहि भिन्न ।
शब्द सुकृत एकै भई, सुकृति घटमहँ चिह्न ॥
याहिवस्तुमों स्थिर रहो, अस्थिर अचलसमाध ।
धर्मदास हर्षंत भए, पायो सुखै अगाध ॥

॥ इति श्री ग्रन्थ ज्ञानस्थिति शुभमस्तु ॥

सर्वसन्त महन्त गुरुनके चरणारविंद सम नमो सत्यते ।

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी दया- वंश व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

त्रयोविंशतिस्तरंगः

छोटा संतोष बोध

चौपाई

धर्मदास विनती सुन ज्ञानी । अमीशब्द भाषो मृदुवानी ॥
हम सेवक तुम सतगुरु मोरा । जीव अचेत भरमवस भोरा ॥
तिनकी आयुष कैसी होई । हंसन मग भाषौ प्रभु सोई ॥

समदश वचन शब्दकी राहू । हंसराज कहु हंसन नाहू ॥
शब्दचाल तेहि काल न पाई । कृपा करो पद बल २ जाई ॥

ज्ञानी वचन

समरथ वचन सुनो धर्मदासा । तुमसों सत्य शब्द परकाशा ॥
संतोषबोध सतहीते भयेऊ । सत्यपुरुष आपन मुख कियेऊ ॥
साधुसंतपर कीन्हे दाया । मोह लोकतें जगत पठाया ॥
उठी अवाज पुष्पतें जैसी । सो वर्णन भाषौं मैं तैसी ॥

पुरुष वचन

हो ज्ञानी तुम अंश हमारा । वचन सत्य मैं कहौ पुकारा ॥
जो कोइ साध मोहको साधे । लोभ मोह तृष्णा गहबाधे ॥
तृष्णा बांध साध जो पावे । आवत लोक वार नहिं लावे ॥
तृष्णा लोभ काल व्यवहारा । जो त्यजि है सो हंस हमारा ॥

ज्ञानी वचन

तत्क्षण ज्ञानी विनती ठानी । वचन तुम्हार कोइ नहिं मानी ॥
भक्तहीन आंधर दुनियाँई । घट २ फाँस कालगइ नाई ॥
कोट वार जीवन परमोधा । कोइ एक सत्य शब्द ममसोधा ॥

साखी–पृथवी जाय जीवन कहि, युग२ शब्द चिताय ।
कोइ एक ज्ञानी चित गहे, आंधर ना पतियाय ॥

पुरुष वचन

जाहु वेग तुम वा संसारा । जो समझे सो उतरे पारा ॥
वार २ तुम जगमें जाई । आपन कह सब कथा सुनाई ॥

ज्ञानी वचन

धर्मदास तब जग हम आवा । आपन कह जीवन समझावा ॥
युग अशंख अर्ब बहु बीता । कै २ वार पृथ्वी हम कीता ॥
शेष गणेश महेश न ब्रह्मा । विष्णु नाम धरती नहिं थम्हा ॥

यह युग बीत अनन्तन बारा । युग २ आयेउ जिव रखवारा॥
नर जाने जुलहा अवतारा । साधन काज देह हम धारा ॥
अगम शब्द नहिं जात गँवारा । बार अनेक जगत पुकारा ॥
जीवन बारहिबार पुकारा । नरदेही बहुतें हँकारा ॥

साखी—जीवनसों घर २ कहा, नहिं माने उपदेश ।
गुप्तभाव हम तब भये, चले अमरपुर देश ॥

चौपाई

पांजी चले ठाव हम भयेऊ । सात स्वर्ग ऊपर चढ़ गयेऊ ॥
तहवां देख धर्म अस्थाना । नानझंकारी ताहि बखाना ॥
द्वारे वज्र सिला दे बैठे । बैठे हर सब जेठे ॥
धर्मराय अति प्रबल जगाती । मांगे दान जीव बहु भांती ॥
तिन हम सबको आद बढ़ावा । कैसे ज्ञानी जीवन मुक्तावा ॥
हम कहें सुनो दुष्ट बटपारा । छोड़हु रार पलकमें मारा ॥
छोड़ ठांव यम भये निनारा । पहुँचे अमरलोक मझारा ॥
पुरुष दरश कीन्हे तेहि क्षणमें । घट २ व्याप सकल जीवनमें ॥
तहाँ नहीं परवेश जमन को । बैठक पाँति सकल हंसन को ॥
हरष शोक नहिं करे कतूला । सदा बसंत फूल ऋतु फूला ॥
मोर चकोर बोल मृदु बैना । कोकला कोयल वचन सुबैना ॥
बैठक तहांही सकल पुरुषकी । बोलत वचन अमीरस रसकी ॥

पुरुष वचन

साखी- वह सत बोले पुरुष तब, सुनो सँदेशी अंश ।
भवसागर बहु दिन रहे, केतक लाये हंस ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई

रहे शब्दसों तब कर जोरी । बंदी छोर विनय सुन मोरी ॥
काम अरु क्रोध मोह औ लोभा । माया फँसे जीव पर शोभा ॥

सकल जीव अघ आतम पुंजा । फिरि २ परहि जनमके कुंजा ॥

पुरुष वचन

तब समरथ अस वचन पुकारा । दुनियाँ जात काल मुख द्वारा ॥
हो ज्ञानी तुम बहुर सिधाओ । शब्द देव जीवन मुक्ताओ ॥
देव परवाना अपने हाथा । सकल जीव जो होय सनाथा ॥
तिनका तोरहु यम का लेशा । माथे हाथ दे कहो संदेशा ॥
नरियर धोती तान मँगै हो । सत्य शब्द देअंक चढै हो ॥
येही शब्द येही परवाना । सत्य शब्द निश्चय कर जाना॥
सन्त समाज सुनो तुम महिमा । गुरुपद परस दरस एक लहमा॥
तेहि समधन नहिं जगमें औरा । कोट जन्म तीरथ फल दौरा ॥
जो कोइ साध मंदिरमें आवे । चरण पखार चरणामृत लावे ॥
नारी पुरुष एक मत कीजे । सतगुरु दया अमीरस पीजे ॥

साखी–काम क्रोध तृष्णा तजे, तजै मान अपमान ।
सद्गुरु दया जाहिपर, यम शिर मरदे मान ॥

चौपाई

जो ये तक तज सेवा करहै । सो प्राणी भवसागर तरहै ॥
सेवा करत कसर भई जाई । तबै कालघर बजत बधाई ॥
सेवा करे चरण चितलाई । पाँच साध मिल भगत कराई ॥
संतोष बोध जीवन पर भाषा । जो कोइ साधू मन दृढ़ राखा ॥
जरा मरण तिनका हो नासू । गुरु पद गह सन्त निज दासू ॥
अगम ज्ञान संतोष वरदानी । हंसा आप होय महिमानी ॥
अगम अपार ज्ञान संतोषू । सकलसाधु हिल मिल परतोषू ॥
संतोष ज्ञान स्वाती सम कहिये । सज्जन सत समझ दृढ़ रहिये ॥
स्वाती ज्ञान साध जो पावे । सो साधू सतलोक सिधावे ॥

साखी–ज्ञानकथा ऐसो कहे, जस स्वातीको पान ।
सबहिनमें जो गुण करे, सन्त लेइ बिलछान ॥

चौपाई

संतोष ज्ञान मल्यागिरि जैसे । निकट वृक्ष प्रबल हो जैसे ॥
श्रोता सुने श्रवण शुभ बानी । ज्ञानी ह्रदय करो बिलछानी ॥
साधू ज्ञान सुने चितलाई । ताका हंस विगोइ न जाई ॥
अन्न सोय जो भूख बुझैहै । ज्ञान सोइ जेहि लोकहि जैहै ॥
सतगुर शब्द गहे जो हियमें । वचन अमोल मानमिल पियमें॥
जाके ह्रदे कपट नहिं व्यापू । सो साधू मेंटे त्रिय तापू ॥
बहुर न देह धरे यहि जगमें । कमलपत्र सम न्यारे जलमें ॥
जो प्राणी ऐसी गहि रीती । तजतहि देह चले यम जीती ॥
काया तजे प्रीति गुरु लागी । हंस समाज पहुँच अनुरागी ॥
गुरु प्रताप मम दर्शन पावे । हंसन समसर सेज बिछावे ॥
अमृत फलके भोजन पैहो । अटल दुलीचा सेज बिछैहो ॥
क्रीट रवीस जगमगत सुहावन । अमर चीर शोभा बहु पावन ॥
षोडश रवि जनु अंग लपेटा । हरषहि शोक सकल दुख मेटा॥

साखी–अस बीरा परताप बल, प्रबल काल क्षय होय ।
जेहि सद्गुर वहियाँ मिले, हंसन जाय विगोय ॥

इति श्रीछोटासंतोष बोध समाप्त

अथ बड़ा सन्तोषबोध प्रारंभ

चतुर्विंशतिस्तरंगः

⊙

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास पूछे चितलाई । तत्त्व भेद कहिये समुझाई ॥
कौन तुरीके योजन दौरा । भाषो साहेब हम हैं भौरा ॥
तत्त्वनके स्थान चिन्हाओ । बाहर भीतर भाषि सुनाओ ॥
विनय करूं कीजे प्रभु दाया । धर्मदास गहे दोनू पाया ॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनो तत्त्व व्यवहारा । निशिवासर का कहूँ विचारा ॥
तत्त्वतत्त्वका स्थान चिन्हाऊँ । कहि करि बाहर भीतर दर्शाऊँ ॥
स्वासासंग होय आवे जाई । तत्त्वभेद सुनियो चितलाई ॥
लालतुरी योजन परवाना । मुशकी कोजन डेढ सिधाना ॥
हरीतुरी योजन दोय जाई । पीला योजन तीनि चलाई ॥
हंसा योजन चारहि ध्यावे । फिरिके दण्ड तबै ले आवे ॥
मूल कमल है तेज ठिकाना । षट दल तत्त्व अकाश बखाना ॥
कमल अष्ट दल है तत्त्वबाई । द्वादश दल पृथ्वी सु रहाई ॥
षोडश दल जलतत्त्व बखाना । धर्मदास गहि राख ठिकाना ॥
याविधि पाचौ आवै जाई । अपनी मनजिलको सुन भाई ॥
पाँचतुरी रथ एक सवाँरा । ता उपर मन जिव असवारा ॥
जाव पड्यो है मनके हाथा । नाच नचावे राखे साथा ॥
क्षण भीरत क्षण बाहर आवे । सतगुरु मिलतो साधि लखावे ॥

साखी—अष्टपांखुरी कमल है, ता ऊपर जिव बास ।
ताकर मनको आसना, नख शिख तनके पास ॥

धर्मदास वचन

साहेब कहो भेद टकसारा। जेहिते जिवका होय उबारा॥
नौ तत्त्वनको भेद बताओ। सकल कामना मोर मिटाओ॥
पाँच तत्त्व जानै सब कोई। चारि तत्त्वकी खबरि न होई॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना। चारि तत्त्व रहै कौन ठिकाना॥
कहों तत्त्वनको भोजन केता। ताके चेते आगम है चेता॥
इनका सतगुरु कहो बिचारा। कहो केता तत्त्व करै अहारा॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं अगम बताऊँ। नौ तत्त्व को भेद लखाऊँ॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना। चारि तत्त्व ब्रह्मांड ठिकाना॥
छठवाँ अग्नि तत्त्व जो होई। नैना बीच रमै पुनि सोई॥
दोयदल कमल बरणहै चारी। बैठ निरञ्जन आसन मारी॥
ताहि कमलको नाम बताऊँ। चारि बरणका रूप दिखाऊँ॥
लखै शब्दसो जानै भेदा। राता पीरा श्याम सपेदा॥

साखी–ताहि कमलको छाडिके, कीजै शब्द विचार।
पाँच तत्त्व संभारिहो, उतरो भव जल पार॥

चौपाई

निशि बासर की स्वांसा जेती। कहूँ विचार चले दम तेती॥
छःसै स्वास इक्कीस हजारा। येते निशिदिन दमहि सुधारा॥
ताको भोजन सबमिलि पावे। जो सतगुरु यहि भेद बतावे॥
बीस सहस्र पंच देव पाई। ताकों लेखो कहूँ समुझाई॥
प्रतिदेव पाछे चार हजारा। रहै जाप सोलहसै सारा॥
छटवें तत्त्व निरञ्जन राई। जाप सहस्र तहाँ पहुँचाई॥
सोलहसै मैं छःसै रहई। ताको भेद हंस कोइ गहई॥
जाप अठोतर जब रहि जाई। ताछिन शब्द सुरति मिलाई॥

साठसमे बाहर चौपाई । ततछिन हंस लोक को जाई ॥
सुषुमनि तत्त्व करे असवारी । तबे कालकी पहुँचे धारी ॥

साखी--जादिन काल ग्रासहि, पगते करे उजारि ।
भागि जीव चढि बैठही, द्वार कुलफ उघारि ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

साहेब इतना भेद बताई । जाते काल छुवन नहिं पाई ॥
सब तत्त्वनको भायो भेदा । एक २ का कह्यो निषेदा ॥
तत्त्वके संग जीव चलि जाई । कौन ठौरनमें बासा पाई ॥
कौन तत्त्व संग धरे जिवदेही । कौन तत्त्व है मुक्त सनेही ॥

सद्गुरु वचन

नौ तत्त्वनका भेद बताऊँ । द्वारा तीनको कहि समझाऊँ ॥
तेज तत्त्वमें करे पयाना । वज्रशिलामें जाय समाना ॥
आकाश तत्त्वमें छूटे भाई । तारागणमें जाय समाई ॥
वायु तत्त्वमें छाडे देहा । वन वृक्षनमें जाय उरेहा ॥
पृथ्वी तत्त्वमें छूटे भाई । तौ जीव देह पशुकी पाई ॥
जल तत्त्वमें जब छूटे जाई । नरकी देह धरे तब आई ॥
अग्नि तत्त्वमें तजे शरीरा । होय पशुपक्षी कहै कबीरा ॥
छै तत्त्वनको कह्यो विचारा । तीन तत्त्वको भेद निनारा ॥
तीन तत्त्व भेद जो पावे । निश्चय हंसा लोक सिधावे ॥

धर्मदास वचन

छै तत्त्वनको पायो भेदा । तीन तत्त्वको कहो निषेदा ॥
तीन तत्त्व देहु प्रकट बताई । जासे हंसा लोक चल जाई ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास सुनिये चितलाई । तीन तत्त्व मैं देउं बताई ॥
शब्द तत्त्व जो जानै भाई । सुरति तत्त्वको ध्यान लगाई ॥

नीर तत्त्व जाके घट होई। ताकर आवागमन न होई॥
नौ तत्त्वनको कह्यो बिचारा। धर्मदास तुम करो सँभारा॥
कहूँ भेद तत्त्वकी बानी। क्षत्र अधर है नाम निशानी॥
षष्ठ कमल नैन लगि देखा। तीन भेदको कहूँ विवेका॥
तीन भेद पुरुष तेहिके पासा। छाड़े काल जीवकी आसा॥
पुरुष शब्द है शीतल अंगा। तत्त्व निःअक्षर कमलके संगा॥
आप पुरुष तेहि पिण्ड न हाथा। पुरुष बिदेहि शीश बिन गाथा॥
कायामांहि लगी यक नाला। तहवां रहे निरंजन काला॥
ताशिर ऊपर पांजी लागी। ताहि चढि हंसा जाये आगी॥
स्वेत औ पीत कमल है गाता। तीन तत्त्व जीव संग रहाता॥
ताहि तत्त्वको भाव सुनाई। तीन रूप तीन महिठाई॥
कायाक्षेत्र ताहि हम दीन्हाँ। खेत कमाय सो आगम चीन्हाँ॥
सप्तपाखुरी कमल यक होई। ताकर भेद कहौं मैं सोई॥
कमल एक लोकहै तीना। तीन लोक तीनोंपुर कीना॥
चौथालोक अधर कहि चीन्हाँ। ताकरि काल गमन नहि कीन्हाँ॥

साखी—तीनलोक विचारिके, गहे शब्द टकसार।
कहै कबीर विचारिके, उतरो भवजलपार॥

धर्मदास वचन चौपाई

साहेब वचन कही परमाना। तीनलोकका कहो ठिकाना॥
चौथालोक मोहि समझाई। सुनू भेद तब मन पतिआई॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास मैं तोहि बुझाऊँ। तीनलोक स्थान चिन्हाऊँ॥
ब्रह्मलोक लिंग अस्थाना। तहाँते उत्पति होय निदाना॥
विष्णुलोक नाभी विस्तारा। शिवका लोकहै हृदय मँझारा॥

चौथालोक अधर अस्थाना । कहै कबीर मैं कह्यौ विधाना ॥
ताहि लोकको ध्यान लगावे । चलत हंस काल नहिं पावे ॥

साखी-अधर करै जब आसन, पिण्ड झरोखे नूर ।
मैं अदली कदली चमूं, कहां खोजे बडि दूर ॥

धर्मदास उवाच चौपाई

साहेब लोक कहा हम जाना । और भेद कछु कहो बखाना ॥
सात पांखडी बरणि दिखाओ । भिन्न २ करि मोहिं लखाओ ॥

सद्गुरु उवाच

सात पांखडी कहूँ ठिकाना । धर्मनि वचन सत्तकर माना ॥
श्रवण दोय पांखडी जाना । सुने शब्द तबही सुख माना ॥
दोय पांखडी नैन बखानी । पापदृष्टि सबही क्षय हानी ॥
पांचये पांखडी कहूँ बिचारा । रसना शब्द उठै इंकारा ॥
छठी पांखडी इन्द्री जानी । उत्पति बिन्दुले डारे तानी ॥
सातवीं पांखडी हंठ बतावा । खोजे कमल स्थिर घर पावा ॥
पांखडी सात कमल है एका । भीतर ताहि जीव मन ठेका ॥
ताहि कमलमें तार लगाई । सोई तारको चीन्हों भाई ॥
सोही तार अधर ले राखा । जो कोइ साधु हृदयमें ताका ॥
ताहि तारका बहुत पसारा । खंड ब्रह्मांड पताला संवारा ॥
ताहि तारमें डोरी लागी । बिरला चीन्है संत सभागी ॥
श्वेतभाव तारको अंगा । नाम निःअक्षर ताके संगा ॥

साखी--कहै कबीर धर्मदाससे, गुप्त निःअक्षर नाम ॥
निःअक्षर लखपावई, होय जीवको काम ।

धर्मदास उवाच चौपाई

कमलभेद तुम भले सुनाया । अक्षरभेद सोइ हम पाया ॥
साहेब कहो जीव किमि आया । नरदेही कैसे करि पाया ॥

कैसे घटमें कौन पसारा । कौन अस्थल बैठक संवारा ॥
इतना भेद कहों समझाई । सतगुरु मैं तुम बलि जाई ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुनियो चितलाई । जो बूझे सो देऊँ बताई ॥
पवनजीव ब्रह्माण्ड रहाई । ता पीछे नाभी चलजाई ॥
नयन नासिका कीना साखी । मूल कमल सुरति गहि राखी ॥
चक्षुज्योति जो बरे उजियारा । हिरदाकमल ब्रह्माण्ड मझारा ॥
जीव बैठे द्वीपन में जाई । काया क्षेत्रमें जाय समाई ॥
ता विधि घटमें जीवहि आया । रज बीजहीते पिंड बँधाया ॥
शीश स्वारि बांही निर्माई । कंठ कमल हृदय बनाई ॥
ता ऊपर द्विपि बदन सवारा । पवनजीवसे भय उजियारा ॥
कमल सब्ज स्वेत है राता । नाभी सकल पुनि सब गाता ॥
ता पीछे दोय खम्भ लगाया । रचिकाया पुनि जीव समाया ॥
स्वाती पवन पुरुषकी स्वांसा । जिन कीना जीवन संग बासा ॥
ताको भेद सुना धर्मदासा । तौलि लेहु सत्ताइस मासा ॥
छिन छिन पलपल आवे भाई । जीव संधि लेखे नहिं पाई ॥
प्रथम घडी ब्रह्माण्ड रहाई । दूजी घडी नाभी चल जाई ॥

साखी-तीजी घडीके बीतते, फिर तहँवा चलजाय ॥
अस विधि रहनी जीवकी, कहै कबीर समझाय ॥

धर्मदास वचन चौपाई

जा विधि जीव देहमें आया । सोई भेद हम निज कर पाया ॥
दयावंत प्रभु और बताई । छूटे हंस कौन दिशि जाई ॥
काया तजिके होय न्हारा । कौन दिशा हंस पगुधारा ॥
तौन ठाम मोहि देहु बताई । तहां सुरति राखु ठहराई ॥

साखी—चारखूट धरती अहै, आठ दिशा है पवन ।
सतगुरु कहो विचारिके, हंसाके दिशि कवन ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

मारग दोय तोहि कहुँ ज्ञाना । एक बंधन एक मोक्ष बखाना ॥
जो स्वासा सँग करै पयाना । पांच तत्त्वमें जाय समाना ॥
फिरि फिरि आवै फिरि २ जावे । बहुरि जगमें नाम धरावे ॥
अधर तत्त्वमें शब्द निवासा । ताहि माहि जिव करै जो बासा ॥
सार शब्दमें रहै समाई । अभय द्वार होइ आवै जाई ॥
वहां न लागै काल कसाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥
गुप्तभेद काहु बिरले पावा । तुमको धर्मनि प्रगट सुनावा ॥

साखी—उत्तर घाटी ऊतरे । अधरहि बैठे आय ।
तहांते सुरति लगायई, पुरुषके परसे पाय ।

धर्मदास वचन चौपाई

ताहि अधरको कहो ठिकाना । देखू जब मेरा मन माना ॥
बिन देखे परतीत न आवै । जो नहिं सतगुरु भेद बतावै ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं भेद बताई । जाय अधरमें जीव समाई ॥
ताहि अधरको कहूँ ठिकाना । योजन आठ ऊपर परमाना ॥

साखी—एक अधर होय आवही; एक अधर होय जाय ।
एक अधर आसन करै, अधरही माहिं समाय ॥

चौपाई

प्रथम हंस सुखसागर जाई । सुखसागर में दर्शन पाई ॥
सुखसागरका यही सँदेशा । लागे उडुगण पाती कैसा ॥
हंसा पैठिके कीन सनाना । भय उजियारी षोडश भाना ॥
लागी डोर शब्दकी नेहा । असपाजी अत्र बिदेहा ॥

लागी डोरी शब्दकी तारा । चढ़े हंसा पांजी उजियारा ॥
चढ़िके हंस अधरसे पेखा । हंसा उलटि ठाटको देखा ॥
भलि साहेब मोहि कीनि दाया । छूटि सकल मोह और माया॥
पुहुपमांहि जस वास समाना । हंस धरै इमि पुरुष ध्याना ॥
या विधि हंस अमरघर जाई । धर्मदास सुनियो चितलाई ॥

साखी–धरती अकाशसे बाहिरे, जहां शब्द निर्वान ।
तहां जीव चढि बैठही, काल मरम नहिं जान ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

सद्गुरु भेद सतहि समाना । द्वीपखंडका कहो ठिकाना ॥
कायाखंड कहो मोहि भाखी । जाते जीव अमरघर राखी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास बूझी भलवानी । सत्य वचन तोहिकहूं बखानी॥
प्रथमखण्ड शब्द है भाई । दूसर खण्ड सुरति ठहराई ॥
तीसर खण्ड निरतिमें ठयऊ । चौथा खण्ड प्रेम निर्मयऊ ॥
पांचवाँ खण्ड शील है भाई । छठाँ खण्ड क्षमा निर्माई ॥
सातवाँ खण्ड संतोष दृढाया । आठवाँ खण्ड दया समझाया॥
नव खण्ड भक्ति कहि दीन्हा । धर्मदास तुम निजकरि चीन्हा॥
इन खण्डनमें खेलै जाई । निश्चय हंसा लोक सिधाई ॥
सुनो सात द्वीपनके नाऊँ । भिन्न भिन्न करि कहिसमझाऊँ॥
द्वीपतत्त्व है बड उजियारा । ताको निशिदिन करो विचारा॥
धर्ती तत्त्व अग्नि जो होई । द्वीपजलानिधि जाय समोई ॥
तेजतत्त्वमें भाषि सुनाई । द्वीप शून्यमें जाय समाई ॥
जलका तत्त्व कहू विस्तारा । तेहि सुखसागर द्वीप सिधारा॥
वायस तत्त्व सुनो धर्मनिवानी । पवनद्वीपमें जाय समानी ॥
तत्त्व अकाश कहूँ समझाई । द्वीपस्वर्गमें जाय समाई ॥

अग्नितत्त्वकी सुनियो बानी । दीप अग्निमें जाय समानी ॥
सुषुमनि तत्त्व कहूँ समझाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥

साखी–सातद्वीप नौ खण्ड हैं इनमें, रहे समाय ।
कहे कबीर धर्मदाससे, निश्चय लोक सिधाय ॥

धर्मदास उवाच

साहब भेद कह्यो हम जाना । सातबारका कहो ठिकाना ॥
सातबार कैसे उपजाई । चन्द सूर्य कैसे निर्माई ॥
सूरज कैसे तेज समोई । सीतल चन्द कौन विधि होई ॥
निशिवासर कैसे कर जानी । ये सब भेद कहो मोहि ज्ञानी ॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास बूझो बल नागर । संत सुकृत ज्ञान उजागर ॥
कहूँ भेद सुनियो चितलाई । चन्द्रसूर दिनवार बताई ॥
पुरुष कमलते सातो बारा । ताको भेद कहुँ टकसारा ॥
सप्तपाखडी जब विकसाई । सातबार तहांते आई ॥
आठवाँ बार कमलमें रहेऊ । ताहि बारते सातो कियेऊ ॥
कलीकमल भये अँधियारा । निशिवासरको भयो विचारा ॥

साखी–मंजन कीनो कमलको, छोलन कीनो पास ।
चन्दसूर जाते भये कियो पृथ्वी प्रकाश ॥

चौपाई

पहिले छोलन जल नहिं रहेऊ । ताते सूर तेज जो भयऊ ॥
सुनियो चन्द्रकेरि शीतलताई । धर्मदास मैं देउँ बताई ॥
सीच्यो अभी छोल पुनि जबही । शीतल चन्दा उपजे तबही ॥
छोलन चूनि झरि झरि परही । नक्षत्र चन्द्रमा संगति करही ॥
यहि विधि चन्द्रसूर जो भयेऊ । धर्मदास हम तुमसे कहेऊ ॥
यह सब रचना कूर्मको दीना । पाछे ध्यान अधरमें कीन्हा ॥

सब विस्तार कूर्महि दयऊ। तबही पुरुष कन्याको कियऊ॥
रचना रही कूर्मके पेटा। धर्मराय ताघर नहिं दीठा॥

साखी--रचना रही कूर्ममें, पुरुषहि दीन सवारि।
जाते शब्द उत्पति भई, सो मैं कहूँ विचारि॥

चौपाई

धर्मराय सेवा सितधारा। तब पुरुष ताहि बाचा हारा॥
पुरुष दीन उत्पति धर्मराई। धायके लडे कूर्मसे जाई॥

साखी--क्षीणें माथा नख करी, हरे सबे विस्तार।
महाशून्य लेय आयऊ, धर्मराय बरियार॥

चौपाई

निकसी खान वेद रस बानी। चांद सूर्य्य यों उडगण जानी॥
सब विस्तार निकसिजब आया। धर्म जलनिधि राख छिपाया॥

साखी--निकसी वस्तु कूर्मते, ना कोइ कीन विचार।
मूल बीज जब पाइया, भयाकाल बरिआर॥

धर्मदास उवाच चौपाई

को ले शीश कूर्म का छीना। यह तो भेद सकल हम चीना॥
धर्मराय कन्या कैसे पाई। तीन देव कैसे उपजाई॥

सद्गुरु वचन

अद्या पुरुष दीन पठवाई। आदि भवानी अमृत लाई॥
अष्टांगी देखी धर्मराई। तासु सुरति संयोग बनाई॥
अद्याके विधि शिवसो मुरारी। मथि जलनिधि रतन निकारी॥
अष्टांगीते भये विस्तारा। सब रचना या कीन हमारा॥

कूर्म वर्णन

बिनती कूर्म पुरुषते लाई। तव सुत शीश हमार छिनाई॥
छोछा उदर भया हमारा। अहो पुरुष कछु देहु अहारा॥

साखी–वचन तुम्हारा मानेऊ, राखि शब्दकी कानि ।
नीर जलानिधि सोखिके, मेटत सब उतपानि ॥

पुरुष उवाच

वाणीपुरुष अधरसे कहेऊ । जाव कूर्म मागि सो लेऊ ॥
वचन हमारा सत जो होई । जो मांगो सो देऊं तोई ॥

कूर्म उवाच

साखी–ना कछु भोजन चाहूँ, ना कछु करूं अहार ।
चन्द्र सूर्य जब पाउं, तब लेऊं शिर भार ॥

पुरुष उवाच चौपाई

चांद सूर्य मैं देहू तोही । कैसे चलै सृष्टि पुनि सोही ॥
जो जगमें होय अंधियारा । कैसे चलै सृष्टि व्यवहारा ॥

कर्म उवाच

साखी–चांद सूर्य चलि आवही, तो मैं करूं अहार ।
चांद सूर्य पहुंचे नहीं, निगुलूं सब संसार ॥

पुरुष उवाच–चौपाई

पुरुष वचन तब कहे विचारी । भोजन सूर पहरलेहु चारी ॥
शशि भोजनका भाषू लेखा । घडी घडीको करूं विवेका ॥
अमी चन्द्रके पेट रहाई । ताको लेखा कहुं समझाई ॥
अमृत क्षणक्षण तुम लेहो । पाछे सम्पूरण करि देहो ॥
चन्द्रतेज धर्मनि इमि हानी । सूर्य्यतेज जो बहुत बखानी ॥
कूर्म पुरुष वचन हियो देखा । घडी पहरको बांधे लेखा ॥
पल क्षण दंड परमाना । घडी पहरकी कहूँ ठिकाना ॥
षट स्वासाकी पल यक होई । षट पलकी क्षण जानों सोई ॥
दश क्षणको यक दंड बखाना । दोय दंड यक घड़ी परमाना ॥
चारि घड़ी यक पहर विवेका । चारि पहरका दिन यक लेखा॥
सात बार दूना करि जाना । यहि विधि पाख भयो परमाना॥

दोयपाखको मास बखाना । दोयमासकी ऋतु यक जाना ॥
दोयऋतुको यककाल विशेषा । तीन चौकड़ी बरष यक देखा॥
आगे देखो ताकर लेखा । धर्मदास अब कहूँ विवेका ॥
निशि वासर पुनि होय जबही । कर्म अहार सुरले तबही ॥
चारिपहर निशिकरै जो ग्रासा । बासरसुर सब होय प्रकाशा ॥
अब चन्दाको कहूं बखाना । धर्मदास तुम निज करि जाना॥
कृष्णपक्ष पडिवा जब आवे । कूर्म अहार चन्द्रको पावे ॥
कूर्मअहार चन्द्र इमि लीन्हाँ । घडी घडी घटती तब कीन्हाँ ॥
शुक्लपक्षते भया निवासा । पूनम चन्द्र किया प्रकाशा ॥
पूनम व्रत कूर्म जो कीन्हा । ताते चन्द्रग्रास नहिं लीन्हा ॥
अमी चन्द्रमें रहे समाई । पूनम अधिक जाहिते भाई ॥
पूरण व्रत पूनमको होई । पूनममें चौका आरम्भे सोई ॥
तीन व्रत वंशको दीना । अंश बचाय अपना करि लीना॥

साखी–दीना अपने वंशकी, करि हैं शब्द संभार ।
गुप्तनाम गहि राखि है, हंस उतारे पार ॥

चौपाई

सुमिरे नाम औ सुरति संभारे । नाम पान दे हंस उबारे ॥
जा दिन मुक्ति साधै कोई । निःअक्षरकी गमताही होई ॥
पूरण व्रत पूनम जो होई । पूनम चौका कूर्मका सोई ॥
अहो कूर्म आसन पर जाई । सत्य वचन कहूँ समझाई ॥
ऐसे वचन कूर्मको भयऊ । कहैं कबीर धर्मनि सुनि लयऊ ॥

धर्मदास वचन

साहेब भेट कहे हम पेखा । अब भाष्यो पवनन कर लेखा॥
पवन भेद मोहि कहौ समुझाई । वचन तुम्हार रहूँ लवलाई ॥
कहो कहां ते पवन उठि आई । दिशा भेद तुम मोहि सुनाई ॥

कवन पवनते जीव उत्पानी । सोई पवन तुम कहौ बखानी ॥
ताहि पवनको नाम बताओ । कर्म काटि हंसा मुक्ताओ ॥
कैसे सीप स्वातीको पावै । कारण कौन बांझ रहि जावै ॥
ये सब भेद दया करि कहेऊ । साहब मोहि अपना करि लयेऊ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुनु पवनकी खानी । कूर्म मुखते पवन उत्पानी ॥
चारि अरति पवन उठि आया । ताको भेद कोई जन पाया ॥
शीश कूर्मका कहूँ बखानी । साधु सुजन कोई कोई जानी ॥
माया आठ पृथ्वीमें भीना । आठ दिशा भइ ताकर चीना॥
माथा आठ आठ है माना । चारि दिशा चारि कौन परमाना॥
माथा तीन छीनि ले गयऊ । माथा तीन पेटमें रहेऊ ॥
ताकर चौदह भुवन बनाया । सोई रूप नर करे सुभावा ॥
अधर पवन सो जीव उत्पानी । चलै उर्द्धसों अधर समानी ॥
ताहि वचनको पारस नामा । होय संयोग उठ जब कामा ॥
झाई और ते देहि जगाई । उमगे काम चलै मनताई ॥
चलै बिन्दु तीन मुख धाई । उरधहुते अधर जब आई ॥
ऋतुबसन्त जा दिन होई । स्वाती पवन पडै पुनि सोई ॥
ऋतुबसन्त त्रियतन आवे । खुले कमल तब चाह जनावे ॥
शिव शक्ति सो मिलि है आई । स्वाती बुन्द शक्ति तब पाई ॥
तीन पवन बिन्दु गहि लेई । ताते बांझ होय नहिं तेई ॥
उत्पति पवन कही हम सोइ । स्वाती पवनले सम्पुट होई ॥

साखी—जाहि पवन पर चंदा रसे, ताहि न ग्रासे काल ।
को यह भेद विचारि है, सोइ जौहरी लाल ॥

चौपाई

धर्मदास तोहि कहूं विचारा । बूझि पडै सो भेदन्यारा ॥

स्वाती पवन छुवन नहिं पावे । बिन्दु अकेला जो उठि धावे ॥
ताते शून्य होय पुनि जाई । कहूँ भेद चितराखु समाई ॥
पवन भेद हम तुमसो कहेऊ । नाम न्यारा इनते रहेऊ ॥

साखी—पवन भेद हम भाखेऊ, तामें कालपसार ।
पचासी पवनके बाहिरे, अरज शब्द है सार ॥

धर्मदास उवाच-चौपाई

पवन भेद सतगुरु हम जाना । अब कछु कहिये नाम बखाना ॥
निःअक्षरका कहो प्रकाशा । है भीतर कि बाहर बासा ॥
कैसे हंसा लोक समाई । कौन वस्तु जो होय सहाई ॥
कैप्रमान वस्तु जो होई । साहेब मोहि कहो तुम सोई ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । संशय तेरो सबहि मिटाऊँ ॥
बावन अक्षर मय संसारा । निःअक्षरसो लोक पसारा ॥
सोइ नाम है अक्षर निवासा । कायाते बाहर प्रकाशा ॥
नाम भेद मैं तुमसे कहेऊ । धर्मदास तुम निजकर ठहेऊ ॥
तौन नाम सुनि हंसा पावे । कहै कबीर सो लोक सिधावे ॥

साखी—धरनि अकाशके बाहिरे; योजन आठ परमान ।
तहां क्षत्रतन राखेऊ हंसा करे विश्राम ॥

चौपाई

बिन सतगुरु कोई भेद न पाई । धर्मदास मैं तोहि लखाई ॥
राई भर है वस्तु हमारी । अर्धराय स्थूल सवाँरी ॥
लहर लहर बादलमें होई । पुरुष मूल निज जानो सोई ॥
उनको सौंप दीन शिर भारा । वै जीवनको करै उबारा ॥
भाषू शब्द प्रथमहैं राई । फूटि अकाश घोर होय जाई ॥
वाहिवक्त जो तजैं शरीरा । आवै लोक अस कहै कबीरा ॥

सत्तलोक अधर है धामा। तहवाँ पुरुष अजर है नामा ॥
तीन नामले हंस उड़ाना। पहुचे हंसलोक अस्थाना ॥
तहाँ गये जिवकाल न पावे। योनि संकट बहुरि न आवे ॥

साखी--सबै भेद हम भाषेऊ, कहा शब्द टकसार।
धर्मदास प्रतीति करि, सुमिरहु नाम हमार ॥

धर्मदास उवाच-चौपाई

कहेउ शब्द मोर मन माना। अब प्रभु कहिये सुरति ठिकाना॥
कहो सुरतिकी उत्पति भयेऊ। कहो निरति दूसर निर्मयऊ ॥
कौन सरूप सुरतिको जानी। कैसे निरति दूसरी ठानी ॥
कैसेके घट आनि समानी। सो समरथ मोहि कहो बखानी॥
सुरति निरति संगति किमि भयऊ। कैसे समझ हृदयमें लहेऊ ॥

साखी--सुरति निरतिकी उत्पति, सब कहि भाषहु मोहि ॥
दोनों कैसे देखिये, पूछतहौ गुरु तोहि ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

धर्मदास मैं कहूँ बखानी। भाखूं सुरति निरति उत्पानी ॥
मूल नाभि ते शब्द उचारा। फूटीनाल भई दुइ धारा ॥
स्वाती पवन अधरते आई। सुरति निरति संगति मिलि धाई॥
सुरति निरति यों उत्पति होई। ताको भेद लखे जन कोई ॥
सुरति निरतकी सुधि ना पाई। सो नर पशु पक्षी है भाई ॥
मूरख सो मोहरति ह्वै गयऊ। शब्द बाँधि जिन सुरतिना गहेऊ॥
तेहि शब्दका करो विचारा। सुरति निरतिले शब्द संभारा ॥

साखी--अंकुर नाम वह शब्द है, कीना सकल पसार ॥
कहैं कबीर धर्मदास सों गहो शब्द टकसार ॥

चौपाई

गहै शब्द सो लोक सिधाई। बिना शब्द पशु पक्षी भाई ॥

बिना शब्द जैसे घट अंधियारा । धरि धरि काल करै अहारा ॥
शब्द सुरति निरति यक ठौरा । कहै पुरुष तहां मोहि निहोरा ॥
अगम तत्त्व गहि मथै शरीरा । निरति नाम भये मत्त कबीरा॥
निरति धरे शब्दकी आशा । सुरति नाम तुम गहु धर्मदासा॥
सुरति निरतिसे बांधे नेहा । पावै नाम होय हंस विदेहा ॥
कथि ज्ञान भाषेउ टकसारा । धर्मदास तुम करो विचारा ॥
हम तुम कीना सकल पसारा । लोक न जाने मूढ गँवारा ॥
मथुरा बैठिके ज्ञान सुनाई । धर्मदास गहे सतगुरु पाई ॥
पूरण ज्ञान तुम मोहि सुनावा । संसय सबही दूर बहाया ॥

साखी–गुरु समाना शिष्यमें, शिष्य लिया कर नेह ।
विलगाये बिलगे नहीं, एक प्राण दुइ देह ॥

इति श्रीग्रन्थसंतोषबोध समाप्त

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

पञ्चविंशतिस्तरंगः

अथ काया पांजी प्रारम्भ

*

धर्मदास उवाच–चौपाई

धर्मदास अब विनती कीना । कायापांजी पूँछ सो लीना ॥
धर्मदास पूछे चित लाई । कायापांजी कहो अर्थाई ॥
काया पांजी कहो विचारी । जहां होय तत्त्व करै पैठारी ॥
काया पांजीका करो बखाना । जहवां सुरतिका सदा ठिकाना ॥
कायापांजी निजकर पाऊं । सुरति शब्दमें जाय समाऊं ॥

कायापांजी कर कहो विशेखा । मैं अपने घट करूं बिबेखा ॥
करि विवेक तहँ सुरति लगाऊँ । पांजी द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
सुरति लगाय रहूँ मैं तहँवां । सार शब्द मूल है जहँवां ॥
करि विवेक तहां सुरति पठाऊँ । पांजी द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
पावो घाट सुरतिके द्वारा । तो मैं सुरति करो पैठारा ॥
बिना घाट कहां जाऊँ भाई । बिन जाने कहँ रहूँ समाई ॥
बिन जाने जाऊँ केहि घाटा । कैसे पाऊँ शब्द के बाटा ॥
बिन जाने शब्दकरि घाटा । शब्द अगम अगम है बाटा ॥
शब्दके अंग अगम है भाई । बिन जाने सब गये नसाई ॥
पाऊँ द्वार शब्दका टीका । अवर सकल जग लागे फीका ॥
अगम शब्द कहो अर्थाई । बिन पाये शब्द गह्यो न जाई ॥
मूल शब्द जहँ होय उचारा । सो पाऊं सुमेरु चढि द्वारा ॥
भाषो द्वार सुमेरु बखानी । कहवांते सुमेरु पुनि जानी ॥
कहवांते अकाशका लेखा । सो मोहि साहेब कहो विवेखा ॥

साखी–धर्मदास बिनती करे, घाट घाट कहो समझाय ।
तहां मैं सुरति लगाइके, शब्दमें रहूँ समाय ॥

सद्गुरु उवाच–चौपाई

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । सुरति शब्दका द्वार चिन्हाऊँ ॥
चन्द्रलगनका कहूँ विचारा । तहवां सुरति करो बैठारा ॥
चन्द्रद्वार होय आवो जाई । यही घाट मैं रहो समाई ॥
दीरघस्वर साधि करो यक घाटा । चन्द्रद्वार होय पावो बाटा ॥

धर्मदास उवाच

कौन घाट चन्द्र है भाई । कौन घाट सूरय पै आई ॥

---

१ विवेखा-विवेक—विचार

सद्‌गुरु उवाच

दहिने घाट चन्द्रका बासा । बाँयें सूर करै प्रकाशा ॥
यही दोउ स्वर साधो भाई । चन्द्रद्वार होय निकसो आई ॥
अगम पंथ दहिने स्वर करहू । सुरती सँयोग नाल चित धरहू ॥
चन्द्रद्वार होय आओ जाइ । शब्द सुरतिमें रहो समाई ॥
स्वर दाहिने सुरति चढ़ाओ । तबही डोर शब्दकी पायो ॥
शब्द डोर दहिने दिशि जाई । धर्मदास तुम गहो बनाई ॥
पाओ डोर शब्दको भाई । अगम पंथ चढ़ि बैठो जाई ॥
गहो बनाइ कटै यम पासी । पहुँचो लोक मिटै चौरासी ॥
स्वर दाहिने होय करे पयाना । तब सोहं सुरति होय अग्रु आना ॥

साखी--कहैं कबीर धर्मदाससे, ऐसा साधो घाट ।
आगे भेद बताऊं, तहं देखो लिजवाट ॥

चौपाई

अहो धर्मदास मैं भेद बताऊ । शब्दहि सुरतिका द्वार चिह्नाऊं ॥
भाष्यो शब्द सुरतिका पासा । सो मैं तुमसे कहों प्रकाशा ॥
कहूँ तत्त्व तहँ करो जो बासा । मथो तत्त्व तुम धर्मदासा ॥
मथो तत्त्व सुरति सो भाई । पुनि आगेको देहु रंगाई ॥
तत्त्व मथो तुम अंश हमारा । तत्त्वसे उतरो भवजल पारा ॥

धर्मदास उवाच

कह्यो तत्त्व तुम मथो बनाई । ज्ञानी तुमहि कहो समझाई ॥
कहवा आहि तत्त्व को बासा । सो ज्ञानी मोहि कहो प्रकाशा ॥

सतगुरु बचन

दहिन स्वर साधि चढ़ो आकाशा । त्रिकुटी मध्य तत्त्वका बासा ॥
त्रिकुटीमध्य तत्त्व जो रहाई । तहाँ सुरति सो देखो जाई ॥
त्रिकुटी मध्य तत्त्वको थाना तेहि मथि आगे देहु पयाना ॥

सुरति डोरी चलै बरजहेरा । मथिके तत्त्व कपाट उघेरा ॥
तेहि आगे सुमेरु बखानी । बरनो द्वार स्वरूप खानी ॥
वाहि द्वार होय सुरति चढ़ाओ। आगे अगम भेद पुनि पाओ ॥
त्रिकुटी आगे सुमेरु ठेकाना । तापर जुब्धा अकाश विधाना॥
आंगुलचारि अकाश परमानो । धर्मदास तुम निजकर जानो ॥

धर्मदास वचन

अब अकाशका भाखो राहा । हम अजानका जानों थाहा ॥

सद्गुरु वचन

अब अकाशका भाखूं लेखा । सुरतिकमल तहँ निजकर देखा॥
बांये धर्मराय अस्थाना । दहिने सुरति द्वार ठिकाना ॥
सुरति कमल सुमेरुके आगे । विहँगम डोर तहांसे लागे ॥
सुरति कमलके रूप बखानो । एक चन्द्र आभा अनुमानो ॥
वाहि कमलमें झलकै चंदा ।सुरति चढ़ाय तुम करो आनन्दा॥
तहवां डोर शब्दकी भाई । सुरति संयोग चढ़ि देखो जाई॥
सुरति नाल है बड़ बरियारा । मध्य लिलाट धर्म रखवारा ॥
शब्द काहे न करहु विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
दहिने सुरति कमल कहँ पावा । तेहि आगे पुनि ध्यान लगावा॥
तेहिढिगसुरतिकमलको लेखा । सुरति तत्त्व नैन बिन देखा ॥
ताकर भेद मैं देऊँ बताई । सुइ परमाण द्वार निरमाई ॥
धर्मदास मैं कहूँ पुकारी ।तिल परमाण तहँ खुलै केवारी॥
तेहि केवार दोय है घाटा । चढ़े सुरति तब पावो बाटा ॥
सोहं सुरतिले चढो संभारी । तिल परमाण खुलै केवारी ॥
नासिकानाल सुरति जो ध्यावे । खोली केवारी तब बाहर आवे॥
पखुरी सुरति कमलको जानी । तासे सुरति करो पहिचानी ॥

साखी–सतगुरु भेद बतावई, तब पावे यह द्वार ।
कहै कबीर धर्मदाससो, निश्चय वचन हमार ॥

धर्मदास वचन–चौपाइ

धर्मदास चरनन चितलावा । अगमागम तुम मोहि बुलावा ॥
आगे गम्य मोहि देहु लखाई । अब मैं गहों सुरति बनाई ॥
यह तो ठीक चिन्हेउ मैं भाई । तुम परताप गम्य हम पाई ॥
अब आगेकर कहो बखाना । जहाँ मूलशब्दका पावों ध्याना ॥
जेहिते शब्दमें जाय समाई । तवन गम्य मोहि देहु लखाई ॥
भाषो मूल जाओं बलिहारी । मूलशब्द पुनि गहों सम्हारी ॥
सुरति कमल गम तुम भाखो । सुरति सम्हार अपने चितराखो ॥
सुरति कमल सुनब मैं साहेब । विहंगम डोरि गही चितलायब ॥
अब आगेका भाषो राहा । हम अजान का जानो थाहा ॥
तुम्हरे जनाय हम जानब भाई । तुम जानो सो करो बनाई ॥

साखी–समरत्थ आगे भाषो, मैंकरूं सुरति सम्हार ।
सकल पसारा मेटिके, उतरू भवजल पार ॥
सतगुरु तब दया भई, पावों पद निर्वान ।
आगे गम्य बतावहु, सतगुरु वचन परमान ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

सुरति कमलके आगे भाखों । तुमसे गोप कछू नहिं राखों ॥
सुरति कमल होय निकसो भाई । विहँगम डोरि गहो चितलाई ॥
विहँगम डोर दहिने दिशि जाई । तुमसों भेद कहौं समझाई ॥
सुरति कमलके कहों ठिकाना । आगे है योजन परमाना ॥
अक्षय वृक्ष तहाँ लागा भाई । दवना मरुआ बरनि न जाई ॥
बेलि चमेली बास सुबासा । बास सुबास किया प्रकाशा ॥

साखी–दवना मरुआ गुलाब है, गुलाब चमेली बास ।
तहवां अक्षय वृक्ष है, धरणों वास सुबास ॥

चौपाई

अक्षय वृक्षके बरणों अंगा । श्वेत स्वरूप तहां देखो रंगा ॥
श्वेत स्वरूप तहां देखो भाई । ऐसा भेद अगम अर्थाई ॥
ऐसा अलख लखे जो कोई । जरा मरण रहित सो होई ॥
विहंगम डोरि तहाँते आई । अकल कलामें जाइ समाई ॥
श्रवण ऊपरका कहों ठिकाना । झींगुर शब्द करै घमसाना ॥
दहिने स्वरपर ताकर ठाऊं । यही निजभेद मैं तुम्हें बताऊं ॥
अर्ध कमल उर्धमुख रहई । तहवां मूल शब्द उच्चरई ॥
धर्मदास तुम करहु संभारा । अकल कलामें शब्द उचारा ॥
ताकी सुरति धर्मनि तुम धरहू । होय धर्मनि यहि शब्दे गहहू ॥
तौन शब्द मैं दीन बताई । उहै डोरीले आगे जाई ॥
सबै दिशि लागी है ताही । यहि डोरी गहि मिलहू वाही ॥
बिहँगम डोरी शब्दमें लागी । झींगुर शब्द ऊबे धन जागी ॥
अकल कमल है श्वेत स्वरूपा । ताहि जोतिका कहों निरूपा ॥
अकल कमलका भाषों लेखा । छत्तीस पँखुरी ताहि हम देखा ॥
झलके मोति वरणि नहिं जाई । चहुँ दिशि ज्योति चमके आई ॥
छत्तीस पखुरीका विस्तारा । आप आप मुख राग उचारा ॥
तेहि भीतरका कहों हवाला । आभा उठि तहां चमके लाला ॥
होय उजियार दीपकके टेमा । पावो जाय सुरतिके प्रेमा ॥
आभा उठे सो वरणि न जाई । तुमकहं दीन अलख लखाई ॥
भीतर कमल होय उजियारा । तहां मूलशब्द करै झनकारा ॥
उमगै मोती लाल अरु हीरा । तहवां बैठे सत्त कबीरा ॥
मोती झालर ऊपर छाजे । भीतर शब्द जो मूल बिराजे ॥
अक्षय कमल जहँ तार ठिकाना । गुह्यकमल जहाँ होय निदाना ॥
तेहि आभा वरणि न जाई । साठ भानुकी ज्योति छपाई ॥

अस उजियार तेहि कमलमें होई। ताका मरम न जाने कोई ॥
अरिष्ट कमल है भेद निनारा। देखो जाई सकल उजियारा ॥
तोहि ठेकान सुरति करु ध्याना। तहां गुप्त होय जाय समाना ॥
एह समान जो बैठे जाई। हो धर्मनि तोहि देउ लखाई ॥
अकह कमल तहां प्रकाशा। ताहि महँ निःअक्षरका बासा ॥
दुइ कमल मुखही मुख जोरा। तेहिमा शब्द करै घनघोरा ॥
गुप्त नाम गुञ्जार तहँ देख्यो। मूलशब्दकी जड़ पेख्यो ॥
गुंजार अकह कमलमें आवे। मूलशब्द झंकार सुनावे ॥
मोतीवरण होय उजियारा। फूही छूटे अगरकी धारा ॥
छूटत अगर धार तहँ भारी। सभै बिलोय मैं कहों विचारी ॥
सुरति संजोय तहँ पिवै अघाई। जाते तप्त दूर होय भाई ॥
अकह कमलमें करो पैठारा। पीवो जाय अगरकी धारा ॥
झमकत अगर तहां निज मूला। उनसम तुल्य नहीं कोइ तूला॥
यहि निज जपु अजपा जापा। पहुँचो लोक मिटै संतापा ॥
बरषे तहां अगरकी धारा। सुरतिनाल तहां करो अहारा ॥
जीवतही तहां रहो समाई। यह निज दीन्हों वस्तु लखाई ॥

साखी—कहै कबीर धर्मदाससे, यही वस्तु निजसार।
यही वस्तु जो जानिये, उतरे भवजल पार ॥

इति श्रीग्रन्थ कायापांजी सम्पूर्ण

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश ब्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

षड्विंशतिस्तरंगः

अथ पञ्च मुद्रा प्रारम्भ

★

सुक्रित वचन

सुक्रित कहें सुनो गुरुज्ञानी। आगम भेद तुम कहौ बखानी॥
सकल सृष्टिकी उत्पति भाखौ। मोसों गोय कछू निज राखौ॥
ब्रह्म जीव कैसे उतपानी। सोई भेद गुरु कहो बखानी॥
मुक्त भेद गुरु देहु बताई। जाते हंसा लोक सिधाई॥

योगजीत वचन

योगजीत तब बोलैं बानी । सुकित सुनौ आदि सहिदानी ॥
जाके मर्म ना जाने कोई । तुमसों भाष कहों मैं सोई ॥
उतपतको सब भेद बताऊँ । अगम निगम सब तुम्हे लखाऊँ॥

साखी–ज्ञान पंचमुद्रा कहों, मूलज्ञान को सार ।
ऋषि मुनि देवनको मता, ताते अगम अपार ॥

चौपाई

प्रथमहि मुद्रा खेचरी कहिये । सो स्थान गगनमो लहिये ॥
धूप बरण तहां लखो प्रकाशा । चेतन ब्रह्मको तामें वाशा ॥
तत्त्वमाहे विचित्र है सोई । कामधेनु तहां कहिये जोई ॥
पुहुप प्रकाश तहां बिजुली देखा । झिलमिल जोत तारागण देखा॥
रक्तवर्ण तहां सूर्य लखाई । प्रथम आकाशको भेद बताई ॥
चाचरीमुद्रा नासिका अस्थाना । उतंग बिंदको है तहां ध्याना ॥
तहां नाकाश गगन है वासा । बिजुली रूपरेख प्रकाशा ॥
मणिगण रतन मुक्तामणि हीरा । सोहंग रूप पवन तहां धीरा ॥
नासा अग्र करै तहाँ मेला । पवन सिन्धुमें दीजे हेला ॥
तासों हंस लीन होय जाई । निःअक्षरसो जाय समाई ॥
चाचरी मुद्रा दियो बताई । ताको भेद कहौ समुझाई ॥
भोचरीको स्थान लखाऊँ । रकाश गगनको भेद बताऊँ ॥
मन बुद्ध चित तहां होत हुलासा । तहां योग कीजे प्रकाशा ॥
चितचेतन तहाँ झिलमिल देखा । नील वरण पवनकी रेखा ॥
तहवां कोट सूर्यको तेजू । झीन महलमों सुखमन सेजू ॥
तहां गगनमो होत अनन्दा । तहां उदित है पूरण चन्दा ॥
तामो अलख ब्रह्मको कहिये । जासों भेद मुक्तको लहिये ॥
तेहिसों ध्यान लगावै कोई । अमी बुन्द तहां चाखै सोई ॥

अगोचरीको अब कहो निवासा। तासों कीजे योग प्रकाशा ॥
सुतंनदी तहां उठे तरङ्गा। झालर भेरी शंख मृदंगा ॥
किंकिन चिंचिन किंगरी बैना। गरजनिशान धुनधुन सुवसैना ॥
शून्य महलमां बैठे जाई। दशोंद्वार तब बन्द कराई ॥
यह विध ध्यान गगनमों करई। सत्तर बाजा तब सुनु परई ॥
अनहद नाद सुने जो प्राणी। उपजे महासुखके खानी ॥
सतगुरु कहें सांच सोई योगी। तहां मरण मगन रमावत भोगी॥
अगोचरी मुद्रा कहा प्रकाशा। ताको योग शुक्रकी आशा ॥
उनमुनि मुद्रा महद अकाशा। अलखपुर्ष तहां कीन्हों बासा ॥
ब्रह्म प्रकाश तहां अण्ड न पिण्डा। लोकालोक नहीं ब्रह्मण्डा ॥
ब्रण अब्रण जात नहीं पाती। नहीं तहां दिवस नहीं तहां राती॥
तामों सरवर गहिर गँभीरा। जाके आदि अन्त नहीं तीरा ॥
ज्ञानी योगी जप तहां लागा। भयोअनन्द सकलो भ्रम भागा॥
तामो लीन रहें जो कोई। गुप्त मनोरथ पावै सोई ॥
योग जीत कहो भेद अपारा। बिरला साधू करे विचारा ॥
खेचरी चाचरी भोचरी जानी। अगोचरा उनमुनिकही बखानी॥
उनमुनि लागी योगपर निद्रा। सुख समाज जहां पर्म अनन्दा ॥
यह प्रकाश उनमुनिमों कहिये। कछुक भेद पुनि तामों लहिये॥
पञ्च मुद्रा और पञ्च अकाशा। पंच ध्यान और पञ्च प्रकाशा ॥
पञ्च वर्ण और पञ्च हैं वेदा। पञ्च तत्त्वके पञ्च हैं भेदा ॥
पञ्च मन्दिर औ पञ्च हैं द्वारा। पञ्च रूप औ पञ्च अहारा ॥
पञ्च इन्द्री औ पञ्च हैं स्वादा। पञ्च विद्या औ पञ्च हैं नादा ॥
पञ्च हैं आसन पञ्च हैं योगी। पञ्च मंदिर औ पञ्च हैं भोगी ॥
पञ्च सक्त औ पञ्च हैं सीउ। पञ्च कर्म औ पञ्च हैं जीउ ॥
पञ्च पृथ्वी औ पञ्च हैं नीरा। पञ्च तेज औ पञ्च समीरा ॥

पञ्च लिंग औ पञ्च हैं पूजा । पञ्च एक पञ्च है दूजा ॥
पांचों आवें पांचों जाई । पांचों मरे पांचोंको खाई ॥
पांचों सुक्षिम औ पांच अस्थूला । पांच डार औ पांच हैं मूला ॥
पांच पाप औ पांच हैं पुन्ना । पांच बस्ती और पांच हैं सुन्ना ॥
पांच पांच पांचों सब भवा । पांच स्वामी और पांच हैं सेवा ॥
पंच गुरू और पंच हैं चेला । पांच भाव और पांच हैं मेला ॥
पञ्च मुद्राका कहों बिचारा । ताको योगी करे सम्हारा ॥
चार छोड़ पांचो करे बासा । ताते पांचका कहो प्रकाशा ॥
पांचों मुद्रा उनमुनि कहिये । तासों भेद मुक्तिको लहिये ॥
ब्रह्म प्रकाश तहाँ पूरन चन्दा । रैन दिवस नहिं सहज अनन्दा ॥
दुतिया भाव तहाँ नहिं काया । तहवां नहीं धूप और छाया ॥
हम तुम कर्म भ्रम नहिं दोई । तहां सिलान ब्रह्म सो होई ॥
सहज शून्यको लखे जो भेवा । आप ही कर्ता आप ही देवा ॥
प्रथमही आपुपुर्ष विस्तारा । तहांते भयो ब्रह्म आकारा ॥
आकारते अहंकार उपजाई । ताते बहु विस्तार बनाई ॥
सोहं स्वासा पुर्ष उचारा । तहांते भौ अक्षर ओंकारा ॥
पांच ब्रह्मकी उतपति भाषौं । तुमसों गोय कछू नहीं राखौं ॥
अकास ब्रह्मको भास बताऊँ । वायु ब्रह्मको तहवां लाऊँ ॥
पुन है तेज ब्रह्मकी बानी । जलकी बहुरि कहौं उतपानी ॥
फिर पृथ्वीको भास लखाऊँ । प्रथम ब्रह्मको भेद सुनाऊँ ॥
अविगत आदि ब्रह्मको भासा । ताको भेद कहौं प्रकाशा ॥
प्रथमें नाम आकाश कहाई । दुतिये गगनाकाश बताई ॥
फिर रकाशको नाम सुनाऊँ । चौथे गगनसकाश लखाऊँ ॥
पांचे महद अकाशकी बानी । पञ्च अकाशमें कहौं बखानी ॥
अब सुन कहौं पञ्च अस्थाना । सक्रित तुमसों कहौं बखाना ॥

मुखके अग्र खेचरी बासा । ताको ध्यान जन करे अकाशा ॥
नासा अग्रत्रिकुटी अस्थाना । चाचरी मुद्रा तहां बखाना ॥
चक्षु अग्र भोचरी जाना । उर्ध अकाशको है तहां ध्याना ॥
श्रवन अग्र अगोचरी थाना । सहज शून्यको है तहां ध्याना ॥
तिलकपाट उनमुनी कहीजै । महाशून्य ध्यान तहां कीजै ॥
प्रथमहि खेचरीक मुद्रा कहिये । धूमबरण रंग तहां लहिये ॥
पीतवर्ण तहाँ देखे जाई । अकह रूप तहाँ रहो समाई ॥
औरो वर्ण रक्त लख आई । कामधेनु तहाँ देखो गाई ॥
कल्पवृक्षकी तहवाँ छाया । नहीं तहाँ काल नहीं तहाँ काया ॥
तहाँ समाध लगावे जाई । अमी बुंद तहाँ चाखे भाई ॥
ताकर पीवत अमर होइ जाई । सोई भेदमें वरण सुनाई ॥
द्वितिये चाचरि मुद्रा बखानी । नासा ध्यान तासको जानी ॥
तहां उतंग ब्रह्मको देखा । हंस रूप तहवाँ पुन पेखा ॥
मणिगण रतन बिन्दको बासा । कर्तारूप पुरुष प्रकाशा ॥
जगमग ज्योति देखिये तहिया । विन शशि सूर उजेरो जहिया ॥
चहुँदिश दामिनि दमके आई । चन्द सूर तामों छपजाई ॥
इतना रूप चाचरी जानी । ताको भेद कहों प्रवानी ॥
त्रितिये भोचारी मुद्रा कहिये । अष्ट अंग पुन तामों लहिये ॥
मन बुध चित अहंकार न माया । ममता काम हर्षकी छाया ॥
तेज पुञ्ज तहाँ झिलमिल देखा । सूक्षम अस्थान तहाँ पुन पेखा ॥
चित चेतन्य तहाँ पुन दोई । तामों मिले परमपद सोई ॥
भोचरी मुद्रा कहि समझाई । ताको मर्म कोइ ज्ञानी पाई ॥
चौथे अगोचरी मुद्रा जाहीं । महाशब्द धुन उपजे ताहीं ॥
नाना ताल बैन मृदंगा । यंत्र ढोल सहनाई अंगा ॥
राबाब किंकिन झालरी बाजा । नभेरी चिंचिन शंखधुन गाजा ॥

मेघनाद गर्जनी तहां कहिये । शंख शब्द धुन तामों लहिये ॥
बाजा सुने सूष्य तव होई । काम क्रोध मद सब गहि खोई ॥
लोभ मोह तज पावे सोई । प्रवर्त छोड़ निरवर्त जो होई
तमो सतो रजो गुण विसरावे । आगे रूप दर्श तब पावे ॥
अगोचरीको अब कहेउ उपाई । योगी कर्म महा सच पाई ॥
पांचे मुद्रा उनमुनि जानी । ताकर भेद अब कहों बखानी ॥
उनमुनि देश लखे जब जाई । अमर वस्तु तब भाषे आई ॥
ब्रह्म अखण्ड देखिये जाई । ब्रह्मरूप तब भाषे आई ॥
श्वेत पीत श्याम नहिं सोई । अरूण सबुजतें न्यारा होई ॥
रूप सरूप हद बेहद नाहीं । चारो बानि खानि नहीं ताहीं ॥
ब्रण अब्रण काया नहिं माया । युग बैदनकी तहाँ न छाया ॥
षटदर्शन पाखंड ना तहाँ । बावन अक्षर अकार न जहाँ ॥
नौ षट चार अष्टदश नाहीं । पांचो तत्त्व धाम नहिं ताहीं ॥
मन बुध चित अहंकार नावासा । काल कर्मको नहीं प्रकाशा ॥
तहाँ ध्यानधर तारी लावै । सोई मूल परम पद पावे ॥
उनमुनि सिखर बहुर चढ़जाई । जहाँकी गम्य देव नहिं पाई ॥
नहिं तहाँ काल नहीं तहँ काया । नहीं तहां प्रमता मोह न माया ॥
चन्द सूर तारागण नाहीं । दिवस रैन तहाँ धूप न छाहीं ॥
पिंड ब्रह्मांडको तहाँ न लेखा । केवल पारब्रह्म तहाँ देखा ॥
अलखरूप तहाँ अबिगत सोई । सबके परे ध्यान वह होई ॥
तासों ध्यान लगावे प्राणी । असी चारके छूटे खाणी ॥
अब वेदनको बास बताऊँ । ताको भेद अब वर्ण सुनाऊँ ॥
जिह्वा अग्र ऋग्वेदको वासा । नासा अग्र यजुर प्रकाशा ॥
श्रवण अग्र शाम सुर्ति कहिये । चक्षू अग्र अथरवण लहिये ॥
शून्य अग्र सोहंग प्रकाशा । तहवाँ सुसमे वेद को बासा ॥

वेदनके अस्थान बताई । अब इंद्रिनके स्वाद लखाई ॥
लिंग इंद्री कामिन सो नेही । जिह्वा षट् श्वाद तो लेही ॥
नासा गंध सुगंध अघाई । चक्षु इंद्री रूप लोभाई ॥
श्रवण स्वाद मधुर धुन बानी । ये पांचोंके स्वाद बखानी ॥
पृथी अस्थूल ऋग्वेदकी बानी । नीर अस्थूल जजुर पहिचानी ॥
वायु अस्थूल साम सुर्ति कहिये । तेज अस्थूल अथरवण लहिये ॥
अनहद अस्थूल सोहंगकी बानी । सुसम देवताको पहिचानी ॥
खोजे ताहि मुक्त तब होई । सुसम बेद सम और न कोई ॥
वेद अस्थूल कहा समझाई । आसन योगी भेद बताई ॥
पृथ्वीरूप जहाँ आसन जाना । जीवरूप योगी पहिचाना ॥
पानीरूप जहां आसन कहिये । हंसरूप योगी तहां लहिये ॥
तेजरूप जहाँ आसन जानी । चेतनरूप योगी पहिचानी ॥
बांयेरूप है आसन जहिया । निराकार योगी है तहिया ॥
आकाश रूप आसन प्रवाना । निरंजन योगी जहाँ बखाना ॥
आवागम अब भेद बताई । तुमसो सुक्रित नाहिं दुगाई ॥
जीव पृथी मिल आवे जाई । मिल पृथी पुनि बहुरि सिधाई ॥
हंस रूप जल मिलके आवे । बहुर नीर मिल घरहि सिधावे ॥
चैतन तेज मिल आवे सोई । बहुर तेज मिल तहाँ सगोई ॥
निरालंब बाये मिलि आवे । बहुर बाये मिल ग्रहे समावे ॥
निरञ्जन मिल आकाशको आवै । बहुर गगन मिल उलट समावे ॥
आवागम मैं दीन बताई । जन पहुँचनको भेद लखाई ॥
प्रथम पृथीको जल उपजावे । सो जल बहुर पृथीको खादै ॥
जलकी उतपत तेज सो होई । भक्षे तेज पुन जलको सोई ॥
तेजको बाये रूप उपजावे । उलट वाये पुन ताको खावे ॥
बाँये रूप अकाश उपजाई । फिर अकाश पुन ताको खाई ॥
आकाश शून्यते उतपत जानौ । बहुरि शून्यमें जाय समानौ ॥

पृथी जीव गृहे कहौं प्रकाशा । गुदा द्वारमों कीन्हो बासा ॥
पानी हंसको गृहे बताई । ललाट अधरमों बैठक पाई ॥
तेज चेतनको धाम बताई । पीत चक्षुके द्वार रहाई ॥
निरालंभ बायेको थाना । नाभी नाशिक द्वार समाना ॥
आकाश निरंजनको प्रकाशा । श्रवण द्वार ब्रह्मांड है बासा ॥
पांचोंके गृह वर्ण सुनाई । रंग अहार कहों समुझाई ॥
पृथ्वी पीतवर्ण उच्चारा । सो तो जीवको कहों अहारा ॥
पानी श्वेतवर्ण है भाई । सो तो अहार हंसको आई ॥
तेजको रक्तवर्ण पहिचाना । सो तो अहार चेतन को जाना ॥
वायेको सबुजवर्ण है भाई । निरालंबको भक्षण आई ॥
अकाश नीलवर्ण पहिचानी । निरंजनको अहारसो जानी ॥
रंग अहार कहेउ समुझाई । पृथ्वी पंचके नीर बुझाई ॥
पृथ्वी नीर पुत्र है भाई । हाड पृथ्वीको बिंद कहाई ॥
नीर पृथीको श्रोणित अंशा । पसीना त्वचा पृथीको वंशा ॥
रोम पृथीको वंश कहाई । पृथी नीरको भेद लखाई ॥
पृथी बिमल गुण कहिये भाई । अब पृथी गन वर्ण बताई ॥
तेज तमोगुणको पहिचाना । बाये गन्धगुण लखो सुजाना ॥
अकाशअलखगुण जानहु भाई । पांचोंके गुणवर्ण सुनाई ॥
अब प्रकीत पचीस बताऊँ । पाचों तत्त्व विभाग लखाऊँ ॥
हाड चाम मास रोम लखाई । नाटिका पृथी प्रक्रित बताई ॥
रक्त पित्त कफ स्वाद बखाना । स्नारप्रक्रितजलतत्त्वको जाना ॥
भूखप्यास मुख प्रभा जम्हानो । आलस निद्रा तेज पहिचानो ॥
धावन कूदन बलकर भाई । परसन सकुचन पवन बताई ॥
लोभ मोह हंकार भै जाना । बिंद अकाश प्रक्रित बखाना ॥
पांच पचीस अंग कहि दीन्हाँ । तासु मर्म कोइ बिरले चीन्हाँ ॥

प्रथमहि जीवरूप पहिचानो। प्रथमें ताके चेला जानो॥
औ पुन हंसरूप है भाई। पानी चेला तास बताई॥
चेतनरूप गुरू है सोई। चेला तेज तासुको होई॥
निरालंब गुरू पहिचानो। वाय तासको चेला जानो॥
अलख निरंजन गुरू बखाना। चेला आकाश तासको जाना॥
गुरू शिष्यको भेद बताई। अब तत्त्वनकी परष लखाई॥

छंद–चौकोर मंद और शुद्धपुरी धरनी है सोई।
नीचे शीतल मंद चले जलको तत होई॥
तेज तत्त्व जो ऊंच आगमनकी आइसु होई।
दहिने बांये चले बाँये तत्त्व जानो सोई॥
सबुजके मध्य सुखमना पवन गगनको जानिये।
आकाश नाम तासों कहि पांचों तत्त्व बखानिये॥
नाभी गंध समान पवनको अंश बखानो।
हृदे माही प्राण अगिनको अंश सो जानो॥
कंठ बसे आपान अंश तेहि जलको जानो।
गगन बसे उद्यान अंश आकाश बखानो॥
सब देहीमें व्यान है अंश पृथ्वीको जानिये।
पंच प्राण ये जानिये अंशहीते पहिचानिये॥

चौपाई

पंचप्राणकी संघ लखाई। अब उनमुनिको भेद बताई॥
मुद्रापांच प्रकट मैं भाषा। तामहि श्रेष्ठ उनमुनि राखा॥
चारोंके परे उनमुनि कहिये। अलखरूप पुनि तामों लहिये॥
सोई ब्रह्मज्ञान कहलावे। धरे ध्यान तहां अमृत पावे॥
पावे साध अमीरस पीवे। सो योगी जग युगयुग जीवे॥
ना फिर आवे ना फिर जाई। अखंड मंडलमें रहे समाई॥

ताको जरा मरन नहिं होई । पर्म तत्त्वमें रहे समोई ॥
योग जीत कहु ज्ञान अपारा । यह मारग है सत्त बिचारा ॥

मुक्ति वचन

सुकित कहैं सुनो गुरुज्ञानी । मुद्रा पंच तुम कही बखानी ॥
और कथा एक पूछो तोहीं । सो समुझाय कहो प्रभु मोहीं ॥
कायामाहे कमल जो होई । तेहि स्थान सुनावो सोई ॥
कौन कमलके पखुरी जाना । कौन देव तहां कीन्हों थाना ॥
कौन कमलसों स्वासा आवै । कौन कमलमों जाय समावे ॥
कौन कमलसों होय गुंजारा । कौन कमलसों करे उचारा ॥
केतिक स्वासा आवे जाई । भिन्न भिन्न सब लेख बताई ॥

योग जीत वचन

हे सुक्रित मैं तुम्हें लखाऊं । कमलनको प्रमान बताऊं ॥
प्रथमहि कमल चतुरदल कहिये। देवगणेश पुन तामों लहिये ॥
रिद्धसिद्ध जहाँ सक्त उपासा । तहाँ जा पूछे सो प्रकाशा ॥
षटदल कमल ब्रह्माको वासा । सावित्री तहाँ कीन्ह निवासा ॥
षटसहस्र तहाँ जाप बखाना । देवन सहित इंद्र अस्थाना ॥
अष्टदलकमलहरिलक्ष्मी वासा । षटसहस्र तहां जाप निवासा ॥
द्वादश कमलमों शिवको जाना । षटहजार जाप बंधाना ॥
तहाँ शिव योग लगावें तारी । पारवती संग सहित विचारी ॥
षोडश कमल जीव मन वासा । एक सहस्र जाप प्रकाशा ॥
त्रैदल कमल भारथी वासा । सोतो उज्ज्वल कमल निवासा॥
एक सहस्र जाप तहाँ कीजै । यह संकल्प जाय तहाँ दीजे ॥
दोय दल कमल हंस अस्थाना । तामह पर्म हंसको जाना ॥
एक सहस्र जाप प्रकाशा । कर्म भ्रमको है तहाँ नाशा ॥
सहस्रदल कमलमों झिलमिल जाना।ज्योति सरूप तहाँ पहिचाना॥
ताहै रंगहै अलख अपारा । अलख पुर्ष है सबते सारा ॥

नवें कमल आदको जानो । जाते निरगुण पुर्ष बखानो ॥
एकइस हजार छैसे जाप कहिये । सो सब पुर्ष ध्यानमों लहिये ॥
अष्ट कमलको भेद बताई । और ज्ञान अब भाषो भाई ॥
स्वासाको प्रमाण अब भाषो । तेहि प्रभाव प्रकटकर राखों ॥
अब स्वासाको भेद बताऊँ । जाको मर्म कोई नहिं पाऊँ ॥
अमी अखण्डते वर्षे धारा । तहांते स्वास होय गुंजारा ॥
निसवासरको जाने मूला । स्वासा सार शब्दसमतूला ॥
दशयें घरते स्वासा आवे । कछु नाभी कछु अलख चढ़ावे ॥
निस दिन चले स्वासाकी धारा । सातसे आगर साठि हजारा ॥
अमी कमल अमान सो नाला । अढ़ाई दल पखुरी रिसाला ॥
तहाँते चले पवनकी धारा । स्वासा माहे शब्द गुंजारा ॥
उनचालिस हजार एकसे आवे । एतिक चिकुर द्वारसो धावे ॥
हृदे कमल होय स्वासा आवे । एकइस हजार और छैसे धावे ॥
एता जाप तहाँ प्रवाना । एकइस हजार और छैसे जाना ॥
एतिक स्वासा हृदे ले आवे । क्षिन बाहिर क्षिन भीतर धावे ॥
दुसरा कमल है झिलमिल माही । झलके जोत अधर धुन ताही ॥
सहस्र पखुरी कमल अनूपा । तहाँ बसे मन जीत सरूपा ॥
ताहे कमल पर बाजा बाजे । सत्तर बाजा तहाँ बिराजे ॥
तहां घरनी घरियार बजावे । घरी घरी टंकोरा लावे ॥
छैसे औ पचहत्तर स्वासा । एतिक एक घरी प्रकाशा ॥
एतिक स्वासा कमत युगमाही । तब घरनी घरियार बजाही ॥
या विधि चार टँकोरा ठोके । राहु केतु संग व्यालि न रोके ॥
पहर एक करे धुन पूरा । गृहण गिरासे शशि औ सूरा ॥
गहन गिरा सत निसरे स्वासा । रवि शशि राहु केतु प्रकाशा ॥
तेहि संग एक सापनी रहई । घरीघरी वह जीवको गहई ॥
श्वासा सोरह ग्रहण लगावे । छटे मास तेहि काल सतावे ॥

स्वासा परख घरीकी राखे । जो दम चले सो आगम भाखै॥
सत्ताइससो स्वासा चले जबही । पहर टंकारा मारे तबही ॥
एतिक स्वासा पहर प्रवानी । घरी चारमों गजर बन्धानी ॥
आठ पहर छ घरी बजावै । ठोके गजर गहर नहिं लावै ॥
चार घरी चारो युग मूला । चार पहर चारो अस्थूला ॥
चारो युग एक पहरके माही । चारो युगकी वर्तै छाही ॥
प्रथम पहर सतयुग प्रवाना । ताकर प्रथम घरी बंधाना ॥
सतयुगमें युग चार अपारा । चारो युगके नाम निनारा ॥
प्रथमह सतयुग रोपो थाना । चारो युग तेहि माहि समाना ॥
सतयुग प्रथमहि घरी उतपानी । किलक नामयुग ताहि बखानी॥
किलक जगकी स्वासा सारा । छैसे पचहत्तर स्वास सुधारा ॥
एतिकस्वासाकिलक युगमाहीं । पूछे जीव अछेकी छाहीं ॥
वीतत घरी गजर घहराई । काल टंकोरा मारे धाई ॥
या युग अन्तकी आवे घरी । ग्रासे नागिन सनमुख खड़ी ॥
प्रथम किलकयुग होय संघारा । पीछे कमतयुग करे पसारा ॥
सतयुग घरी दूसरी आवै । तेतिक स्वासा कमत युग पावै॥
जवे कमत युगकरे हंकारा । उतपत थोरी बहुत संघारा ॥
कमत युगकी स्वासा जानो । छैसे पचहत्तर स्वासा बखानो॥
एतिक स्वासा कमत युग माही । गुण औगुण सब निरखें ताही ॥
बीते कमत कमोद युग आवै । तीसरी घरी बासना धावै ॥
आवागवन विचारे जोई । युग कमोद सुख पावे सोई ॥
तिसरी घरी कमोदकी आवै । तब कमोद युग सुख दिखरावै॥
युग कमोद अमल जब आवै । दुखी सुखी नर सब सुख पावै ॥
युग कमोदकी प्रलै होई । दुखी सुखी जाने सब कोई ॥
तबही होय सूर संचारा । महाविरोध उपजे संसारा ॥

चन्द सनेह होय जो हीना । महामूल तन होय मलीना ॥
श्वासा घरी सातसे भारी । युगकमोदकी कथा निनारी ॥
युगकंकवत होय पैसारा । चौथी घरी क्रोध अधिकारा ॥
ताकी घरी निकट जब आवै । सतयुग अंत कंकवत पावै ॥
सतयुग अंत होन नहिं पावै । युग कंकवत आन समावै ॥
युगकंकवत काल दुखदाई । काया कहर गिरासे आई ॥
युगकंकवत कालकी बाजी । कलह विकार सब जगमों साजी॥
युगकंक्कवत महाबल योधा । अंतकाल सतयुगसों क्रोधा ॥
सतयुगअंत कंकवत माहीं । अंतकालकी व्यापे छाहीं ॥
युगकंकवत मोहकी छाहीं । काम क्रोध ममता लपटाहीं ॥
अंतकाल सतयुगके भयऊ । चारो युग परले तर गयऊ ॥
चारों युगका भेद बतावा ।अगम निगम सब भाष सुनावा॥

साखी–एके युगके बीतते, चारों गये बिनास ।
एक नाद चारों युग खायो, सतयुग कीन्हो ग्रास ॥

किलक कमोद चंदके नेहा । कमत कंकवत सूर सनेहा ॥
भये युग अंत एक संगचारी । चार शब्द एक नाद सँचारी ॥
एक नाद एक पहर कहावै । चार घरी एक माहि समावै ॥
चार घरी चारों युग बीतै । शब्द नाद रवि शशिघर जीतै॥
सतयुगको तब भयो बिनाशा । त्रेतायुगको भयो प्रकाशा ॥
दूसर युग तब भौ विश्वासा । दूसर पहर तत्त्व प्रकाशा ॥
तेज लगन श्वासा अनुसारी । ताते त्रेतायुग संचारी ॥
त्रेता युगकी पखुरी चारी । चार घरी युग चार बिचारी ॥
जस युगअंत सतयुगमों देखा । सोई युग त्रेतामों लेखा ॥
जब जब अंत होय युग केरा । तब तब नादकाल घन घेरा ॥

त्रेता युगमों कलह अपारा । यज्ञ दान व्रत नेम अचारा ॥
तेहि पीछे द्वापर युग आवा । काल अंत तब आन समावा ॥
अहंकार तामें अति भाखा । अब कलयुगकी वर्णों साखा ॥
काम क्रोध और पाप अपारा । लोभ मोह यम कीन्ह पसारा॥
एक पहर चारों युग जाना । ताको वर्ण कहों बिछलाना ॥
पांच तत्त्व तीनों गुण कहिये । ताते पिंडकी उतपति लहिये ॥
अष्टधात कहिये अस्थूला । ताते रचो गर्भको मूला ॥
शिवकी श्वासा वायु सरूपा । सक्ती गहे जानके रूपा ॥
शिवको रूप शक्ति गहि लेई । तब सांचा मो जावन देई ॥
जावन जगे तब सांचा माहीं । थाका होय रुधिरके ताहीं ॥
तेहि थाकाकी रचना भारी । तीन लोककी विभो सवारी ॥
महल मध्य पुनि जीव समावा । जलके भीतर महल बनावा ॥
महलके माहिं बनाये छज्जा । तामो दश कीन्हों दरवज्जा ॥
सांचा अन्न जरे नहिं कबहीं । पिंड सवारो अन्तर जबहीं ॥
सांचा माहिं दियो रंग ढारी । नख सिख शोभा बहुत सवांरी॥
तीनों लोक रचो पलमाहीं । गढ़पति अंश तब साजा ताहीं॥
प्रथमहि सायेर सात सँवारा । पर्वत आठ कीन्ह अधिकारा ॥
अठारह गंडा नदी बहाई । तामह गुप्त बहै ठहराई ॥
अठारह सहस्र बनाये नारा । अष्टधातुले साज सुधारा ॥
रक्त हांडको सब अस्थूला । बाढ़े लिंग सवांरे मूला ॥
आगे रचो दोइ भुज दंडा । सातद्वीप पृथ्वी नौखंडा ॥
बहुर सँवारो दोय पग खंभा । मदन महाबल उपजो रंभा ॥
नासा चढाय मस्तक पर लाई। सातभँवर नौनाट लगाई ॥
उतर मेर शिर जो अस्थूला । सरवर माहिं कमल बहु फूला ॥
नाभी माहिं दल चार बनाई । फूल फल बास घट छाई ॥

आठो अंग रचो अस्थूला। शिव शक्ती दोनों समतूला॥
सोई अंग शक्त सोइ ईसा। एकै रूप एक समदीसा॥
नख सिख रचो गर्भस्थाना। सातद्वीप नौखंड बखाना॥
प्रथमहि ब्रह्म द्वीप निरमावा। ताऊपर बहु रचना लावा॥
एकद्वीप नौखंड बनाई। त्रिकुटी सात तहां निखाई॥
एकद्वीपमहँ सातो नाला। सातोनाल सात हैं चाला॥
सरवर सात कमल हैं साता। रंग पांच पांचौ उतपाता॥
त्रिकुटी मध्य एकहै कीला। तहां देखिये रंगरसीला॥
ता कीलामह कानी लागी। पवन सनेह आत्मा जागी॥
ता कीलामह लागी डोरी। खूंटा लगा पवन झकझोरी॥
झूले मन पवन झूलावै घेरी। एक घर शून्य एक घर फेरी॥
खूंटा होयके पवन झकोरी। इंगला पिंगला सुखमण जोरी॥
रविशशि पवन गहे मन जोरी। खूंटा लाग पवनकी डोरी॥
मेरे डंडपर खूंटा गाड़ा। नदी तीन ताऊपर बाढ़ा॥
खूंटातरे नदीत्रिय बहई। तीननदी बिच खूंटा रहई॥
खूंटाके दहिने दिश गंगा। अति शीतल बहै नीर तरंगा॥
सूरसनेह नीर हिय पर्सै। सुर्तसनेह धनी तहँ दर्सै॥
खूंटाके है बांये अंगा। यमुना नदी बहे अतिरंगा॥
सुखमन सरस्वती नीर तरंगा। लहर लालच तेज विष अंगा॥
तहां बसे सरयू तेहि साथा। रावल एक बयालिस हाथा॥
काल अनन्त रूप रस नाथा। बसे अधर दीखे नहिं माथा॥
बाढी नदी दोइ बिकरारा। शीतल तेज बहे दोउ अधारा॥
तिसरी नदी गुप्त पर्वाहा। अविगत जल बहेअगमअथाहा॥
खूंटा तरे होय नदी सिधारा। चली सरस्वती फोरि पहारा॥
मध्य लहर रस विषके खानी। गंगा यमुना बीच समानी॥

त्रिकुटी संगम भयो मिलाना । भवर गुफा माधो करथाना ॥
त्रिवेणी तट बसे सुढंगा । ताको मम लखा परसंगा ॥
गणगंधर्व मुनि सब कर थाना । सुर नर मुनि कर बैठे ध्याना ॥
तैंतिस कोट देव मुनि भारी । यक्ष यक्षणी देव कुमारी ॥
नागसुता अपसरा मोहिनी । चढ़ बिमान सब फिरे जोहिनी ॥
असुरपिशाचऋषनागजोलाहल। त्रिवेणीतट करे कोलाहल ॥
तीनलोक जौ जीव निवासा । सो सब करो त्रिवेणी बासा ॥
त्रिवेणी तट माधौ देवा । सब मिल करे तासुकी सेवा ॥
ताहि प्राग होय चलो प्रवाहा । गंगासागर संगम जाहा ॥
देश देश गंगा फिर आई । घाट घाट बहु क्षेत्र बँधाई ॥
जहां तहां तप ध्यान लगावे । योग यज्ञ तप बहुत करावें ॥
ऋतुबसंत प्रागको धावे । मकर नहाय बजार लगावें ॥
अर्ध उर्ध बिच लागी हाटा । भीतर बाहर औघट घाटा ॥
गर्भमाहि सब युक्ति बनाई । तीन कचहरी तहां लगाई ॥
जहां नदी संगम पर्वाना । तहवां रचो एक अस्थाना ॥
संगम बीच गुफा एकधारा । ताहि गुफामों सात है द्वारा ॥
एकद्वार होय नाद सुधारे । एकद्वार होय रूप निहारे ॥
एकद्वार होय वास बसावे । एकद्वार होय अन्न समावे ॥
एकद्वार हो स्वाद लिवावे । एकद्वार होय न्याय चुकावे ॥
एकद्वार होय नाद उचारा । योग जीव यह मता विचारा ॥
सातनाल चौदह सुरभाऊ । सातोंके हैं एक सुभाऊ ॥
सातो सात शून्य मों बासा । सातो बसे गुफाके पासा ॥
अनहद भेद श्वासाकी धारा । ताको भाषतहों व्यवहारा ॥

साखी–रचना भाषेउ पिंडकी, श्वासा सहित विचार ।
बिरलाजन कोई परखि है, अलखरूप व्यवहार ॥

सुकित वचन-चौपाई

सुक्रित कह सुन सत्यगुरु ज्ञानी । अगम कथा कही अन्तरयामी ॥
और कथा अब मोसों भाषों । जो पूछों सो गोय न राषों ॥
हंस अवधको भेद बतावो । तास मर्म सब मोहि सुनावो ॥
आगम वरष मासषट जानो । तो कछु अपनो निजमत ठानो ॥
ताको भेद कहों समुझाई । सो मोहि सतगुरु भेद लखाई ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो सत्त मम बानी । भिन्न भिन्न मैं कहों बखानी ॥
पाचघरी बांये सुर पाई । सोई दहिनो श्वासा चलाई ॥
दशश्वासा सुखमन जो कहिये। ताको भेद बराबर लहिये ॥
आठ पहर पिंगला सुर हाले । बरष तीसरे हंसा चाले ॥
आठ दिवस दहिनो सुर बहै । हंसा अवध वर्ष दोय रहै ॥
सोरह दिन पिंगला सुर बोलै । बर्ष एक मो हंसा डोलै ॥
वीस रैयन दिन दहिनौ पाई । तब षट मासमों हंस चलाई ॥
एकति सरोज दक्षस्वरको जानो। तब दोय दिनमों हंस पयानो ॥
पांचघरी सुखमन जो हाले । पांचघरी मो हंसा चाले ॥
चन्द सुर सुषमन छपजाई । मुखसे तीजो पवन चलाई ॥
ऐसी विधि पवन चलाई । पहर माहिं हंसा चल जाई ॥

साखी–धूम मंडल दीखे नहीं, जोत न नेत्र लखाय ।
छठे मास हंसा चले, बचै न कोट उपाय ॥
छाया शीस दीखे नहीं,भुजा शिखर ना दिखाय ।
दीप बास आवे नहीं, छठे मास चल जाय ॥
गगन शब्द गरजे नहीं, नेत्र गुञ्ज छपजाय ।
मास एकके अवधमें, हंसा तन तज जाय ॥
भँवरगुफा तिल ना लखे, पुतरी जब चढ़जाय ।
पहर एकमें जानिये, हंसा तन तज जाय ॥

सुक्रित वचन चौपाई

सुक्रित कहे सुनो गुरु ज्ञानी । आगम पचैं सब हम जानी ॥
और एक पूछौं गुरु तोही । भिन्न भिन्नकै भाखौ मोही ॥
जीव ब्रह्म कैसे प्रगटाई । सबके उतपत देहु बताई ॥
ताकर भेद गोय जिन राखो । सत्य सत्य सब मोसो भाखो ॥

कौतुक

कौन सो मन है कौन पवन है कौन शब्द है भाई ।
कौन प्रान है कौन हंस है कौन ब्रह्म ठहराई ॥
कौन काल है कौन जीव है कौन शून्य पहिचानी ।
कौन शिव है कौन निरंजन कहो सकल उतपानी ॥

योगजीत वचन

चंचल मन है श्वास पवन है शब्द शून्य पहिचानी ।
प्राण निरंतर अखल ब्रह्म है सोहंग हंस बखानी ॥
कारण काल शून्य अविनाशी जीव कर्म पहिचानी ।
जीव शक्ति करतार निरंजन ऐसा भेद बखानी ॥

सुक्रित वचन

मन कहाँ रहे पवन कहाँ वासा शब्द बास कहँ कीन्ह ।
कहाँ प्रान कहँ ब्रह्म बास है हंस कहाँ है लीन्ह ॥
कारण काल केहि ठोर बसत है कहाँ शून्य ठहराई ।
जीव शीव निरंजन बासा सो मोहि देहु बताई ॥

योगजीत वचन

हृदे मन है नाभि पवन है अनहद शब्द को वासा ।
निरन्तर प्राण ब्रह्म ब्रह्मण्डे गगन हंस पर्काशा ॥
सकलमें काल शीव चंदामें शून्य निरूपम माहीं ।
सुखमन मध्य निरंजन बासा योगी देखे ताहीं ॥

सुक्रित वचन

इन्द्री नाभी तब नाहीं स्वामी पवन कहा तब बासा ।
जादिन अनहद रूप नहीं तब शब्द कहां पकाशा ॥
ब्रह्मांड ना तो तब ब्रह्म कहां तौ गगन नहीं कहां हंसा ।
निरूपम विना शून्य कहां कहिये भेद कहौ प्रकाशा ॥
आकार नहीं तब जीव कहाँ तो चन्द नहीं तब शीऊ ।
सुखमन नहीं तब कहां निरंजन समुझाय कहो सब भेऊ ॥

योगजीत वचन

इंद्री विन मन हतो निरूपम निराकारमों पवना ।
अलख रूपमों शब्द बासतो अविगतिमों तब प्राना ॥
अविनाशीमों हंसबास तो शून्य कालमों बासा ।
ॐकारमों काल बास तो ऐसा भेद प्रकाशा ॥
जीव शीवमों प्रथमो बासा शीव निरंजन माहीं ।
सबको बास प्रकट कर भाखों भेद कहौं तुम पाहीं ॥

सुक्रित वचन

कहांते उतपत भयो निरंजन कहाँ शीव उतपानी ।
काल जीव कहांते प्रकटो शून्य भयो केहि खानी ॥
कहांते उतपत भये अविनाशी कहांते उतपन हंसा ।
कहांते उतपन ब्रह्मभयो है प्राण भयो कह अंशा ॥
शब्द पवन मन कहाँते उतपन कहाँते प्रकटो जीऊ ।
सबके उतपन मोसों भाखौ केहि विधि प्रकटो शीऊ ॥

योगजीत वचन

आदि ब्रह्मते भयो निरंजन तहांते प्रकटो शीऊ ।
तीन भेद तुमसों कहो सुक्रित शिवते उपजो जीऊ ॥
जीवते उतपत काल भयो है कालते भयो ओंकारा ।
ओंकारते शून्य भयो है शून्यते जोत प्रकारा ॥

जोत ब्रह्मते सब प्रकारा अगम भेदको कहो विचारा ।
अखंड रूपते भयो अविनाशी अविनाशी ते हंसा ॥
शब्दते उतपत पवनकी है पवनते स्वांसा अंशा ॥

सुकित वचन--चौपाई

अन्तकाल जब आवे भाई । तन छूटे मन कहां समाई ॥
पवन शब्द हंसा कहां सिधाई । अन्तकाल कहवां ठहराई ॥
कालशून्य तब कहा समैहै । जीव शीव कहवां चल जैहै ॥
अन्त निरंजन कहो समाई । ताको भेद कहौ समुझाई ॥

योगजीत वचन

तन छूटे मन जोत समाई । पवन श्वांसमें तब खप जाई ॥
प्राण समाय शब्दके माहीं । हंस ब्रह्ममें तब खपजाहीं ॥
अबिनाशी शिवमाहे समाई । ब्रह्म अलखमें तब खप जाई ॥
अलख अनूपमों जाय समाना । अन्त प्रलैको भेद बखाना ॥
उतपत सकल भाष हम दीना । ताको भेद लखो पर्वीना ॥
सत्य सत्य यह बानी जानो । आदि वचन यह तुम निर्वानो॥

सुकित वचन--चौपाई

हे समर्थ मैं तुम बलिहारी । खोल भेद अब कहौ बिसारी॥
केता प्रवान लोक अस्थाना । ताको भेद कहौ निर्वाना ॥
संख्या योजन ताकी भाखो । ताकर भेद गोय जनि राखो ॥
कहां कौन सो पुरी रहाई । कौन अंश तहाँ आसन लाई ॥

साखी—सब उतपत तुम भाषिया, भेद कहेउ समुझाय ।
अब मन मो निश्चय भई, आगम भेद लखाय ॥

योगजीत वचन

साखी—योजनकी मरजाद बहु, आगे जो पर्वान ।
अंशसहित अब भाखेऊ, तिनको नाम बखान॥

चौपाई

अब मैं कहौ लोककी बानी । निरगुण भेद कहौं बिलछानी ॥
प्रथमहि कुम्भ रूप औतारा । पीछे सकल सृष्टि बिस्तारा ॥
योजनकोट एक मुख कहिये । कोट पचास पीठ तेहि लहिये ॥
एक कोटको मस्तक जाना । कोटकोटके अन्त बखाना ॥
एक कोटपर नेत्र बताई । सोरा माथ चौसठ हाथ पाई ॥
पृथी ते दून कुम्भ है भाई । पूरबदिशि मुख बरन भुनाई ॥
उंचास कोट पृथ्वी पर्वाना । ताके तरे कुम्भ अस्थाना ॥
बहुर अष्ट दिगपाल बखाना । कुम्भ पीठपर है अस्थाना ॥
चौसठ पुंडरीक तहां कहिये । बावन लक्षको मस्तक लहिये ॥
छयकोट ऊचे प्रमाना । कुम्भ पीठपर कीन्हों थाना ॥
ऊपर कुम्भ शेषको जाना । पंद्रह कोट ताहि प्रवाना ॥
तहां वासुककी बैठक कहिये । और वराहु तासुपर लहिये ॥
ताकी डाढ़ पृथी ठहराई । राई प्रवानसो दीखे भाई ॥
पर्वत अष्टपृथी पर जाना । मध्यपृथी सुमेर बखाना ॥
सोरह सहस्र नीचे बधाना । एता योजन तरे समाना ॥
बीस सहस्र योजन चौरासी । चार दिशा तेहि फेर रहासी ॥
चौरासी सहस्र योजन प्रवाना । इतना ऊँच सुमेरु बखाना ॥
तापर चारपुरी हैं भाई । अमरपुरी पुन तहां बनाई ॥
तहां इंद्र सुखराज कराई । तीन देव अस्थान बताई ॥
तैंतिस कोट देवता जाना । अठासी सहस्र ऋषि प्रवाना ॥
तहां कुबेर भंडारी कहिये । अलकापुरी नामसो लहिये ॥
नौ पदुम नील अठतालिस । चौंतिस पर्व अर्ब उनतालिस ॥
सतावन कोट कहों प्रवाना । पैंसठ लाख कहो बंधाना ॥
पञ्चानवे सहस्र और तहां कहिये । पचास एकसो योजन लहिये ॥

एता योजन कहो प्रमाना । पृथ्वी अकाशको अन्तर जाना ॥
एता स्याम अंड पहिचानी । आगे और अवलोक बखानी ॥
पृथींते लक्ष योजन बंधाना । तहवां सूरज देवको अस्थाना ॥
सूरजते चन्दलोक है भाई । योजन लक्ष आगे चल जाई ॥
चन्दलोकते आगे जाना । योजन लक्ष नक्षत्र बखाना ॥
योजन लक्ष आगे चलजाई । ताके आगे भौम बताई ॥
भौमके आगे बुध अस्थाना । योजन लक्ष आगे प्रवाना ॥
बुधके आगे गुरु पहिचानो । योजन लक्षमें ताहि बखानो ॥
गुरुके आगे शुक्र बताई । योजन लक्ष कहों ठहराई ॥
शुक्रके आगे शनिको जाना । लक्ष योजन आगे पहिचाना ॥
शनिके आगे अदित बखाना । योजन लक्ष कहो प्रवाना ॥
तेहिके आगे सोम कहीजै । सोमके आगे राहु लहीजै ॥
राहु केतु लोक अस्थाना । योजन लक्ष आगे बंधाना ॥
तहांते लक्ष योजन प्रवाना । तहवां सप्तऋषीश्वर जाना ॥
तेरह लक्ष ऋषिन सो भाई । आगे विधिको लोक बताई ॥
तहांते लक्षयोजन बंधाना । महाविष्णु आगे पवाना ॥
श्रीनारायण बैठे जहँवा । सूवा ऊपर पालंग तहँवा ॥
पग अगुष्ठ मुख दीन्हों सोई । बालरूप तहाँ कीन्हों जोई ॥
तहाँते गौलोक कहावे भाई । राधा सती तहाँते आई ॥
सोई नाम अचिंत कहावे । सच्चिदानन्द ताहि गोहरावे ॥
इहांलग सगुणरूप बतलाई । यही चारों वेदन गुन गाई ॥
आगेको कछु भेद न पाई । इहांलग सबही मिल गोहराई ॥
तैंतिसकोट इहांलग गावे । आगेका कछु भेद न पावे ॥
चारमुक्तका कहे बखाना । यही रूपको करे पवाना ॥
बहुते तेज उहांलग जाई । प्रले समै नाश होय भाई ॥

नौ औतार देहधर आवा । सो अचिंतके अंश कहावा ॥
जहांलग अंश सकल पुन देखा । तहांलग मायारूप विशेषा ॥
आगे अक्ष लोक है भाई । तहां गये फिर बहुरि न आई ॥

साखी—इहांलग सरगुण रूप है, सो हम दीन्ह लखाय ।
जग नहिं जानत तासको, निरगुणके कोधौं आह ॥

सुक्रित वचन--चौपाई

हो समर्थ तुम अगम अपारा । तुम हो निरगुणके औतारा ॥
अब आगेको भेद बताई । लोक पुर्ष सब वर्ण सुनाई ॥
जहवाँ हंस जाव ठहराई । बहुर नहीं प्रलैतर आई ॥
ताकर भेद कहो समुझाई । अगम निगम सब वर्ण सुनाई ॥

साखी—सतगुरु भाषो आदिते, लोकन को पर्वान ।
केता अन्तर ताहिको, पुर्ष भेद निरवान ॥

योगजीत वचन--चौपाई

हेसुक्रित मैं कहों बखानी । वर्णों अगम निगमकी बानी ॥
अचिंतलोकमें दीन्ह बताई । लोकालोक सब वर्ण सुनाई ॥
अब भाषों निरगुणको लेखा । योजन संख्या लोक विशेषा ॥
अचिंतके आगे लोक बखानो । तीनअशंखयोजनपहिचानो ॥
सोहंगलोक तहां है भाई । आठ अंश तिनते उपजाई ॥
सोहंग पुरुष है अगम अपारा । जगर मगर जहाँ हैउजियारा ॥
सोहंग पुर्षके आगे जाना । मूल नाम तहाँ पुर्ष बखाना ॥
पांच असंख्य योजन प्रमाना । तहवां मूलनाम बंधाना ॥
मूलनाम तहं आसन कीन्हा । आदि पुर्षके अंश जो चीन्हा ॥
मूलपुर्ष है अगम निसानी । तास भेद मैं कहों बखानी ॥
मूलपुर्ष ते आगे जाना । अंकुर नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
तीन असंख आगे है भाई । अंकुरनाम तहँ पुरुष रहाई ॥

ताको उग्रलोक है भाई। तहां अंकूर उदित रहाई॥
अंकूरलोकते आगे जाना। इक्ष नाम तहां पुर्ष बखाना॥
चार असंख योजन प्रमानी। इक्ष्या पुर्ष तहां रजधानी॥
सोई पुर्ष कर्ता होय आवा। आदपुर्षके अंश कहावा॥
प्रथम पुर्षकी इक्ष्या आई। ताते इक्ष्या नाम कहाई॥
ताहि पुर्षको कहों ठिकाना। है सुक्रित तुम सत्तही माना॥
इक्ष्या आगे लोक बखानो। सोतो अंश पुर्षको जानो॥
नौ नील एक संख बखाना। बानी नाम पुर्ष स्थाना॥
पुर्ष प्रथम बानी उच्चारा। ताते नाम सर्व आकारा॥
ताहि पुर्षको भेद बताई। एतो आद पुर्ष हैं भाई॥
बानी नामते आगे जाना। सहजनाम तहां पुर्ष बखाना॥
दशलाख एकशंख बखाना। सहज पुर्षको तहां अस्थाना॥
तहवां सहज पुर्ष है भाई। आदिपुर्षके अंश कहाई॥
सातपुर्ष इहांलग जाना। निरंजन अक्षर नीचे थाना॥
अचितसौ अक्षर उपजे भाई। निरंजन अंश अक्षरते आई॥

साखी–निरंजन और सहजलों, नौ पुर्ष प्रमान।
आदिपुर्ष आगे कहों, जितने सब उतपान॥

सहज अंशलग जेतिक भाषा। सो रचना परलयतर राषा॥
इहांलग प्रलैको प्रमाना। आगे अक्षैलोक अस्थाना॥
सहज पुर्षते आगे जाई। आदिपुर्षको लोक दिखाई॥
सहजते एक असंख प्रवाना। तहवां आदिपुर्ष निरबाना॥
तहँवा प्रलैकालकी छाया। नहीं तहां कछु मोह और माया॥
तहां न तीनों गुनका भेषा। ब्रह्मा विष्णु तहां न महेशा॥
नहीं तहां जोत निरंजन राई। अक्षर अचित तहां नहिं जाई॥
तहां नहीं शिवशक्ती औतारा। नहीं तहां अक्षर ओंकारा॥

ब्रह्मजीव नहीं तत्त्वकी छाया । नहिं तहँ दशइंद्री निरमाया ॥
काम क्रोध मद लोभ न कोई । तहवां हर्ष सोग नहिं दोई ॥
नादबिंदको तहां न पानी । नहीं तहँ सृष्टि चौरासी जानी ॥
चंद सूर तारागण नाहीं । नहीं तहँ दिवस रैनकी छाहीं ॥
ज्ञान ध्यानको तहां न लेषा । पाप पुण्य तहवां नहीं देषा ॥
डार मूल तहां वृक्ष न छाया । जीव सीव तहांकाल न काया ॥
पवन न पानी प्रुरुष न नारी । हृद अनहृद तहां नहीं विचारी ॥
यंत्र मंत्र तहां दरद न धोखा । नर्क स्वर्ग संशय नहिं शोका ॥
श्वेत पीत सबज नहीं लाला । मोर सोर नहीं वृद्ध ना बाला ॥
पिंड ब्रह्मांडको तहां न लेखा । लोक अलोक तहां नहीं देखा ॥
मन औ वृद्ध पवन नहीं जाना । रचना बाहिरसो अस्थाना ॥
आदि पुरुषको है तहां थाना । यह चरित्र एको नहीं जाना ॥
हे सुक्रित मैं तुम्है लखावा । निरगुणरूप वर्ण दशीवा ॥

सुक्रित वचन

हो सतगुरु तुम आगम भाषा । वर्णेउ पेड़ पत्र अरु शाखा ॥
अब तुम कहो पुरुषको रूपा । कैसी कला हे कौन स्वरूपा ॥
लोक प्रकाशको भेद बतावो । लोक प्रमान मोहि समुझावो ॥
यामें कछू न राखो गोई । है समर्थ अब भाषो सोई ॥

साखी–आदि पुरुषके रूपको, कहो भेद समुझाय ।
लोक प्रमान मरजाद सब सो मोहि देहु बताय ॥

योगजीत वचन–चौपाई

प्रथम पुरुषको रूप बखानो । सो तुम रूप हृदयमों आनो ॥
पुर्षअंग छबि वर्ण सुनाई । गुप्त भेद मैं तोहि लखाई ॥
पुरुष शोभा अगम अपारा । ताको को अब बरणे पारा ॥
कोट अनन्त योजन लौ काया । कहां लग कहों तासुकी छाया ॥

कछु संक्षेप मैं देउँ बताई । कहां कहों कछु वर्णि न जाई ॥
कोटि कल्प युगजाय सिराई । मुख अनन्तसो बर्णि न जाई ॥
ये कछु सूक्षम रूप लखाऊँ । कछु कछु शोभा बर्ण सुनाऊँ॥
अब मस्तकको बर्णौं भेषा । मानों अनंत भानु शशिलेखा॥
जगर मगर मस्तक उजियारा । बर्णत बनै न रूप अपारा ॥
अब नेत्रनको कहों प्रमाना । मानो अनन्त भान शशि जाना॥
जिमि कोटिन दामिन लपटानी । जोत अनंतनकी जिमि खानी ॥
वर्णत बने न ताको रंगा । कहांलग कहों तास प्रसंगा ॥
नासारूप कहों प्रचंडा । मानो अन्न अनन्त ब्रह्मंडा ॥
षोडष बास तहांते प्रकटाई । घ्राण अनंत योजन लग जाई ॥
श्रवणरूप मैं कहों बखानी । अनंत सिंध मानो समानी ॥
ता मह कमल अनन्तन फूला । साखा पत्र डार नहिं मूला ॥
ताको शोभा बर्णि न जाई । कमल रूप तहां अधिक सुहाई॥
अब मुख शोभा कहों बखानी । पिंड ब्रह्मांड तेहि माहि समानी॥
नौ शून्य जहां लग बासा । सो मुख भीतर कीन्ह निवासा॥
लोक अनंत देखिये ताही । सर्वाकार रूप है जाही ॥
पुषरूपका बर्णों भाई । वर्णत बने न होय दिठाई ॥
पुरुष शोभा अगम अपारा । मुख अनंत नहीं पावे पारा ॥
चिकुर शोभा कहों बुझाई । कोटिन रवि शशि रोम लजाई॥
कोटिन चंद सूर प्रकाशा । एक एक रोम अनन्तन भासा ॥
पुरुष अंगका करो बखाना । रचना कोट तासुमों जाना ॥
श्वेत अकार पुरुषको अंगा । फटकबर्ण देहीको रंगा ॥
शब्द स्वरूप पुरुष है भाई । वर्णो कहा वर्ण नहिं जाई ॥
जहां लग जीव बुन्द है भाई । ताकर भेद कहौं समुझाई ॥
जीव अनन्त बुन्द सम जानो । अमी सिन्धु पुरुष पहिचानो ॥

यह प्रमान पुर्षको जाना । सो अब तनमों कहों बखाना ॥
सूक्षिम रूप गगनमों बासा । ताहि रूपको कहों प्रकासा ॥
तनभोरूप जो सूक्षिम जानो । सोई रूप बाहिर पहिचानो ॥
जो भीतर सो बाहिर कहिये । एकप्रमाण रूपसो लहिये ॥

साखी—बारूके दशअंश कर, ताकर बिस्वा बीश ।
ताहूते सूक्षिम कहो, इम प्रकटो जगदीश ॥
लोक समानो पुर्षमो, पुर्षहि लोक समान ।
पुर्ष निरंतर लोक है, लोक पुर्षमो जान ॥

सुक्रित वचन—चौपाई

हो समर्थ मैं तुव बलिहारी । सर्व भेद तुम कही विचारी ॥
अब प्रभु कहो ध्यानको लेखा । जेहिते रूपहि पुर्षको देखा ॥
ताको नाम मंत्र उपदेसा । सो सतगुरु अब कहो सँदेसा ॥
सोई मंत्र गुरु देहु बताई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
करनी योगकी रहनी आशा । हंसा करे लोकमों बासा ॥
सोई नाम गुरु देहु बताई । मेरो हंस लेहु मुक्ताई ॥
और रहनी हंसनकी भाखो । मोसों गोय कछू जनि राखो ॥
कौन नेहते हंस कहाई । कौन नेहते लोक समाई ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो सत्य मम बानी । जैसी रहन हंस पहिचानी ॥
तास रहन अब वर्ण सुनाऊँ । नेह प्रेमकी जुक्त लखाऊँ ॥
जैसे सीप स्वात करे नेहा । लागी प्रीत भूल निज देहा ॥
जैसे त्रिया पुर्षको चाहै । या विधि संत ध्यान औगाहै ॥
जैसे चात्रिक बुंद पुकारा । सोई लगन संत अधिकारा ॥
जैसे बासको भँवर लोभाई । योजन एक तहां उड़ जाई ॥
जैसे चंद चकोर हुलासा । ऐसे संत पुर्षको आसा ॥

जैसे लोहा चुंबक लग जाई। तैसे संत ध्यान लपटाई ॥
जैसे कनिका कपूरको धावै। ऐसे प्रीत संत लवलावै ॥
जैसे पतंग दीपकको धावै। ऐसे संत ध्यान लपटावै ॥
जैसे नेह बारि औ मीना। ऐसे संत नाम लवलीना ॥
जैसे बाल बहिन महतारी। ऐसे लगन तहां संत विचारी॥
ऐसे प्रीत करे जो कोई। सत्यपुर्षको पावै सोई ॥
ऐसे प्रीत गगन मन लावै। गुरुप्रतापते दर्शन पावै ॥
और रहन मैं देऊँ बताई। जाते बेग पुर्ष दर्शाई ॥
आपामेट आप दर्शाई। प्रेमसिंधुमें जाइ समाई ॥
विरहरूप करुणा अधिकारी। लागी ज्वाल निरन्तर भारी ॥
जगसों नेह झूठ करजाना। मनसों सब जग मिथ्या माना ॥

साखी-मनसों त्यागे जक्तको, जान विषयकी खान।
मुक्ति अब मैं भाखेऊँ, राजस योग प्रमान ॥
कायासों कारज करे, सकल काजकी रीत।
कर्म भय सब मेटके, सत्त नामसों प्रीत ॥

अब सुन ब्रह्म ज्ञानकी बानी। ताकर रीति लेहु पहिचानी ॥
एके ब्रह्म सकल घट देखा। ऊँच नीच काहू नहिं पेखा ॥
शत्रु मित्र एक कर जानै। पाप पुण्यको भेद न आनै ॥
करै कर्म पुरुष परिवारै। अपनो करतब मन नहिं धारै ॥
सब कछु करे पुर्ष रे भाई। अपनो शीस ना भार चढाई ॥
सुख औ दुःख एककर जानै। इनको भाव मिथ्यापहिचानै ॥
झूठ वचन नहिं जीव सतावै। दया भाव सबही सो लावै ॥
इंद्रीस्वाद स्वप्न कर जानै। रूप कुरूप नाम मनो आनै ॥
वाद विवाद न जाने प्राणी। हार जीत एक सम पहिचानी॥
उत्तम मध्यम मर्म न जानै। कर्तारूप सकल पहिचानै ॥

जात वर्ण नाहीं कछु मानै। चार अंग एक दृष्टि समानै॥
जहां लग दृष्टिपरे जो कोई। इच्छा पुर्ष जानिये सोई॥
सोवत जागत लखे अकारा। तहांलग कर्तारूप निहारा॥
चारखान धरती असमाना। सो सब कर्ता माहि समाना॥
जलथल सप्तदीप नौखण्डा। लोक अलोक सकल ब्रह्मण्डा॥
गुप्तप्रकट जहांलग आकारा। सो सब कर्ता बीच निहारा॥
भिन्नभाव कछु दृष्टि न आवै। सोई ब्रह्म ज्ञान कहलावै॥

साखी—कर्तारूप विचारिये, जहांलग सकल अकार।
इच्छा द्वैत विनास होय, रहो एक करतार॥
प्रथमहि अविगत ब्रह्म है, तिनते ब्रह्म अनेक।
सकल बुंद सिंधुहि मिले, बहुर एकको एक॥
द्वैत रूपको ध्यानमो, कारज लहे न कोय।
आदि पुर्ष चीन्हे बिना, मुक्त कौन विध होय॥
सुकित सुनो सुजान, अक्षै नाम चीन्हे बिना।
यमघर करे पयान, युगनयुगन भर्मत फिरे॥
तैंतिस कोट बखाना, सकल देव अब भाषिया।
तिनमों तीन प्रमान, जीव सकल विस्तार है॥
युगप्रति तन धरधर मरे, मायाको व्यवहार।
अंतकाल सबको भषे, इनते पुर्ष निनार॥
आदि पुर्ष बैठे जहां, अविगतरूप अनाद।
रचनाते बाहिर रहै, तिनको भेद अगाध॥
महाविष्णु गोलोकके, और अचिंत बखान।
रहा भगा जीत मह, ताको करे प्रवान॥
पिंडमहीं ब्रह्मांड औ, नहीं लोक आकार।
अनंत लोकते भिन्न है, सुकित करो विचार॥

निरगुण मो मन लीन रहु, करे जीव गतनाश ।
बहुर काल बश ना परे, अजर अमाघर बास ॥
जिन संतनको यह मता, बरनत बने न मोहि ।
तिन पटतर का दीजिये, कहि समुझाऊं तोहि ॥
संतकोट वारो जहां, ज्ञानी लक्ष अनेक ।
जो निरगुनमों रत सदा, सो अनंतमों एक ॥

सुकित बचन--चौपाई

हो समर्थ मैं तुव बलिहारी । संतन महिमा कहो विचारी ॥
संतरूप कैसे पहिचानी । महिमा तासु कौन विधि जानी ॥
कैसे भेद तासको पावै । कैसे पर्म संत बस आवै ॥
और संत एक देहु बताई । तुमको आहु कहांते आई ॥

योगजीत बचन

हो सुकित मैं कहों बखाना । तुमसों भेद कहों निर्बाना ॥
अपनी उतपत देहु बताई । तुम्है भेद कछु नाहे दुराई ॥
आदि भेद अब कहों बुझाई । तुम सुकित सुनियो चितलाई ॥
प्रथमहि पुर्ष आप निबाना । तब नहिं रचना अश बखाना ॥
जबै पुर्ष मन इच्छा आई । षोडश अंश तबै उपजाई ॥
चौदह सुत तहां रहे छिपाई । तिनको भेद कोई नहीं पाई ॥
सक्त निरंजन तब उपराजा । जिन सब कियो सृष्टिको साजा ॥
तिनसों त्रिगुनरूप प्रकटाया । जिनसों भई सबनकी काया ॥
तिन पुन चारों वेद बखाना । तामें जीव सबे लपटाना ॥
चारखान तव प्रकट कीन्हा । तेहिमों फाँस जक्त सब लीन्हा ॥
फिर पुत चउदह यम उपराजा । तब चौरासी कीन्ह समाजा ॥
तीरथ व्रत औ नेम अचारा । दान पुण्य जप मंत्र विचारा ॥
इतना करे जग्तमें कोई । यमकी त्रास न छूटे सोई ॥

यामह सकल जीव उरझाई । अंतकाल पुन धरधर खाई ॥
स्वर्गलोकमह जो चले गयेऊ । तेतो आके देह फिर धरेऊ ॥
तेहुना यमकी छूटे त्रासा । भांत अनेक जीवनको फाँसा ॥
जबै पुर्ष अस देखेउ भावा । सत्तपुर्ष एक ख्याल बनावा ॥
सत्तपुर्ष इच्छा उपजाई । पुहुप नाम तब अंश बनाई ॥
तिन्हे पुर्ष अस आज्ञा कीन्हा । भौसागरको आयसु दीन्हा ॥

साखी–पोहोप नाम तबही चले, पुर्षहि शीस नवाय ।
भौसागरमों प्रकटभो, अबिगत रूपबनाय ॥

चौपाई

अबिगतरूप छांड हम दीन्हा । संत स्वरूप भेष गहि लीन्हा ॥
शब्दस्वरूप बनाये सोई । तिनकी देहन छाया होई ॥
पाँच तत्त्व तीनोंगुन नाहीं । धरी देह तव बसत युगमाहीं ॥
सत्तनाम हम नाम धरावा । सब जीवनको संध लखावा ॥
या विध अजदेह धर लीन्हा । सबको आय सिखावन दीन्हा ॥
तब पुन जगमों संध लखाई । निरगुन मता सबै समुझाई ॥
जो जिव संध शब्दकी पाई । जीव असंखन लोक पठाई ॥
प्रथमहि सतयुगमें हम आये । सत्त नाम तब नाम धराये ॥
तब हम जीव असंखन तारे । यमको मार तब जीव उबारे ॥
त्रेतामाहिं बहुर हम आये । मुनिकह बोध मुनींद्र कहाये ॥
कोटिन जीवको संध लखाये । एतिक जीवको तब मुक्ताये ॥
तीजे फिर द्वापरयुग आई । मुनि करुनामै नाम धराई ॥
कोटिन जीव तबै हम तारे । महाकालते जीव उबारे ॥
फिर कलियुगको आयेउ भाई । योग जीत तब नाम धराई ॥
कालहिं जीत हंस मुक्ताये । सत्य शब्दकी संध लखाये ॥
जीव असंखन तारेउं आई । सत्तपुर्षकी दर्श कराई ॥

साखी–चारो युग हम आइया, कीन्हेउ हंस उबार ॥
कलयुग नाम बखानऊँ, योग जीत उच्चार ॥

चौपाई

सुक्रित सुनो भेद निर्वाना । अपनी उतपत कहा बखाना ॥
अब संतनको कहों संदेसा । जेहि विध लखो तासको भेसा ॥
तिनकी रहन अब देउँ बताई । जाते तुमही संत लखाई ॥
निरगुण चाल चले पुनसोई । सोई संत शिरोमणि होई ॥
तीरथव्रत औ नेम अचारा । इतने रहैं संतसो न्यारा ॥
दानपुण्य जगवर्ते धर्मा । एतो जक्त जानिये कर्मा ॥
पूजा जाप ना दुतिया राखै । सत्तनाम हृदे अभिलाखै ॥
तैंतीसकोट देवगण भारी । ये सब माया रूप निहारी ॥
दुतिया ध्यान अनित्य विचारै । अक्षै नाम हृदेमों धारै ॥
सोई निरगुण संत कहाई । ताकी परख मैं देऊँ बताई ॥
रहे विरक्त होय जगमों सोई । विरही संत सोइ पुन होई ॥

साखी–यह तो विस्वा धर्म है, दुतिया जप तप ध्यान ।
पतिव्रता इनमों नहीं, मगके रोरा जान ॥
अक्षय नामको गहि रहे, तजे द्वैतके आस ।
सत्तपुर्षको पावई, पूरण पर्म विलास ॥
रहो एकता चित्तमों, दुतिया उसको जान ।
गगनमगन निशिदिन रहै, निरगुणसो पहिचान ॥

चौपाई

सुकृत सुनो ज्ञान अब सोई । निरगुण संत कैसे बसहोई ॥
प्रथम संतको पावे जाही । प्रेम प्रीत तब कीजे ताही ॥
करे बंदगी शीस नवाई । निज गृह तबे ताहि लैजाई ॥
चंदन घसे धासको छावे । तापर बस्तर श्वेत बिछावे ॥

चरन पखार चरनारज लीजै । बहुत भांतसो भोजन दीजै ॥
महाप्रसाद तासुको लीजै । पीछे औपुन पूजा कीजै ॥
प्रथम बंदगी कायक जाना । मायक बायक फिर पहिचाना ॥
तीनों बंदगी करे बनाई । अनेक भांतिसो ताहे रिझाई ॥
द्रव्य देनको लोभ न कीजै । चरन तरे ताहि धरदीजै ॥
अष्टधातको काया जाना । सो उद्धार कैसे पहिचाना ॥
काया भार उतारके लीजै । चउदह रतन तब गुरुको दीजै ॥
आरती करे बहुभांत बनाई । काया भार तब ताको जाई ॥
यहविध भक्त करो चितलाई । यमको डंड छूट तब जाई ॥

साखी—आरती कीजै पुष्पको, बहुत दीनता लाय ।
कागाते हंसा भयो, सत्त भक्तको पाय ॥

इतनी प्रीत संत जब जाना । तबे संतसो निज मत ठाना ॥
क्रिया करै तबहीमुख बोलै । तबे संत दिल पर्दा खोलै ॥
तबे बस्तु निज देहि लखाई । तासो हंस समाध लगाई ॥
सोई करनी कछुदिन करई । आदिब्रह्म अंतर लख परई ॥
पुर्षलोकमों रहे समाई । तबही बुंद सिंध मिलजाई ॥
इतना खोज करे पुन जबही । अजर अमर घर पावे तबही ॥
निरगुण संतको भेद बतायो । निजमत खोल मैं तुम्हैं लखायो ॥
अब एक आगम तुमसों भाषों । सुक्रित गोय कछू नहिं राषों ॥

साखी—निरगुणको औतार है, सो प्रकटे जग आय ।
ऋषिमुनि ताको ना लखे, गुप्तसो रहो छिपाय ॥

ताको भेद अब देहुँ बताई । संत रूपसो जगमों आई ॥
बालक होय पुन जगमों आवै । कमलपत्र पर आसन लावै ॥
निरूनाम जुलहा कहाई । भक्तहेत ताके गृह जाई ॥
खान पान कछु करि हैं नाहीं । दिनदिन अंग बढ़त पुन जाहीं ॥

शब्दस्वरूप देह तिन होई । पांचपचीस तीन नहिं कोई ॥
छलदिक्ष्या रामानंदसो लैहैं । तिनको फेर उलट समुझैहै ॥
पांडव यज्ञ तिन पूरन कीन्हा । स्वपच भेष तिनही धर लीन्हा ॥
कोटिन हंस तबै मुक्ताई । सत्तनाम कबीर कहाई ॥
अजर अमरहो तिनकी काया । जासु देख काँपे यमराया ॥
सोई नाम कबीर कहाई । हमैं उन्हे कछु अंतर नाहीं ॥
ते पुन जगमों परकट होई । ताकर अवध बताऊँ तोही ॥
सम्बत पंद्रहसे बीस प्रमाना । तबे आय जगमों प्रकटाना ॥
निरगुण संध तब जगमों आई । सोई नाम कबीर कहाई ॥
दोई दीन को बोधे आई । मगहर अमी नदी बहाई ॥
पंडाके पग जरत बुझाई । परसो तगको भरम छोड़ाई ॥
सत्य शब्द प्रतीत दिढ़ाई । भौसागरते जीव मुक्ताई ॥
जीव असंखन तारे जबही । आवें अंशलोकते तबही ॥
कोटज्ञान धर्मदासहि देहैं । ब्यालिस पिढ़ीथाना बैठेहैं ॥

साखी—नौतम अंश पुर्षके, सो प्रकटे संसार ।
जीव असंखन संगले, जहां पुर्ष दर्बार ॥

भौसागरमें रोपेव थाना । धर्मराय शिर मरदेउ माना ॥
तिनको मता सन्त जब पावे । सोतो अजर अमर घर आवे ॥
ताको काल न पावे सोई । गुरु कबीर निज पावे जोई ॥
हमरो उनको एक शरीरा । जाको सुनियो नाम कबीरा ॥
सत्त कबीर पुर्ष निर्वाना । तिनको तुमसों कहों बखाना ॥

साखी—अजर अमर सोइ जानिये, जाको नाम कबीर ।
तासु संध जाने बिना, हंस न लागे तीर ॥

मुक्ति वचन—चौपाई

हे समर्थ तुम आगम भाषा । आगकी अब बर्णो साखा ॥

निरगुन अंश लीन्ह इम जानी । ध्यान मंत्र प्रभु कहो बखानी ॥
आगे बिनै करों बहु बारा । ताको भेद कहो निरधारा ॥
जीव मुक्तको भेद बताई । आपन करमो कह मुक्ताई ॥
बिनती करो दोय कर जोरी । ध्यान मंत्रकी भाषों डोरी ॥
ताको मता धरोजिन गोई । मोसो वर्ण सुनावो सोई ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो भेद निर्वाना । जीवमुक्ताको कहों प्रमाना ॥
मंत्र ध्यानको बर्णो अंगा । ताको भाव कहों प्रसंगा ॥
आदि मंत्र मैं देहु बताई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
सोई जाप अंतर लो लाई । अंतकाल ताको नहिं खाई ॥
ऐसा तुम्हे कहों उपदेशा । अंतर ध्यानको कहों संदेशा ॥
प्रथमहि जो सुख आसन लावै । राजस योग तब करे बतावै ॥
काया कष्ट न व्यापै कोई । राजस योग पुन कहिये सोई ॥
पांच पचीसकी सुर्त बिसारै । अस्थिर बैठ ध्यान उचारै ॥
बैठ शून्य महलमों जाई । तबै निरंतर ध्यान लगाई ॥
प्रथम विरह वैराग समावै । रचना सकल तहाँ बिसरावै ॥
एक पुर्ष एक आपको जानै । द्वैत अकार शून्य पहिचानै ॥
तबही ध्यान समाध लगाई । जाकी सुर्त अन्त नहिं जाई ॥
दहिनो अंग श्वास जब आवै । तबै ध्यान महँ सुर्त लगावै ॥
पिंगला अंग पुर्षको बासा । बाँये अंग शक्त प्रकाशा ॥
शक्त अंग कह देहु बचाई । दक्ष अंग वह सुर्त लगाई ॥
प्रथम रूप सोहंग उचारा । तामों लखो पवनकी धारा ॥
तामहँ अर्ध पवन जो कहिये । सोहंगनाम पुन तामों लहिये ॥
प्रथम ध्यान धर देखे सोई । अंग अंग की पचैं होई ॥

तास अंगमें देहु बताई। यह कौआय कहांते आई ॥
सोतो पुर्षको अंश कहाई। भीतर बाहिर सिद्ध कराई ॥
पिंड ब्रह्माण्ड रहा भरपूरी। सोई निकट सोई है दूरी ॥
तब अजपाकी तारी लावै। बिन जप हंसा तहाँ समावै ॥
श्वेतरूप श्वासा को रंगा। सुर्त समानी ताको संगा ॥
सप्तपताल कोट ब्रह्मण्डा। सातद्वीप पृथवी नौखंडा ॥
सोई सबमों रहा समाई। सो जगको करतार कहाई ॥
एक संख छैलक्ष प्रमाना। इतना योजन लोक बखाना ॥
सोहंग नामको लोक प्रमाना। आगे पुर्ष कहों निर्बाना ॥
पदाराख गुप्तकर भाखो। अक्षरकाट गुप्तही राखो ॥
जेहिते जक्त लखे नहीं कोई। गुप्त अंक कर भाषों सोई ॥
ताके आगे नाम बखानो। सोई नाम गुरुगमते जानो ॥
प्रकट नाम कर भाषो सोई। सुनके जीव तरे सब कोई ॥
अब मैं कहौं आगेकी बानी। गुप्त अंक गुरुगमते जानी ॥
प्रथमही सोहंग नाम बखानो। तामह सोहंग ब्रह्म समानो ॥
सोहंग मध्य कोहंग दर्शाई। सोतो अंश पुर्षको भाई ॥
दोय असंख दशनील बखाना। एता योजन लोक प्रमाना ॥
श्वेत अंग तिनहूको कहिये। सोहंग पार धामसो लहिये ॥
तिनके दर्श हंस जब पाई। कर प्रनाम तहँ शीस नवाई ॥
सोहंग नाम आसिका दीन्हा। बहुत भांति तिनदाया दीन्हा ॥
तबे हंसको लीन्ह बुलाई। लोक प्रमान सब दियो बताई ॥
तब उन डोरी दीन्ह लखाई। ता चढ़ि हंसा लोक सिधाई ॥

साखी–सोहंगको प्रनाम कर, तब डोरी गहि लीन ।
पुर्ष नाम सुमिरत भयो, परे पयाना दीन्ह ॥

तब आगेको कीन्ह पयाना । कोहंग नाम जहाँ अस्थाना ॥
कोहंग नामको देखा जबही । हंस प्रणाम कीन्ह पुन तबही ॥
दोयकर जोर सब अस्तुति कीन्हा । मस्तक हाथ पुर्ष तब दीन्हा ॥
तबही हंस बहुत हरषाना । पायो पूरन पद निर्वाना ॥
तीन असंख बटनील बखाना । एता योजन लोक प्रमाना ॥
श्वेत स्वरूप पुर्ष है सोई । श्वेतही वर्ण लोक वह होई ॥
तबै हंसको लीन्ह बुलाई । पाँजी लोकको दीन्ह बताई ॥
मकतार तब डोर लगाई । तब आगेकी संध बताई ॥
हंस प्रनाम पुर्षको कीन्हा । तबही डोर हंस गहि लीन्हा ॥

साखी–बहुत भांति तिन पुर्षसों, हंसा कीन्ह प्रनाम ।
तब आगे गवनत भयो, जोहंग नामको भाम ॥

तब हंसा आगे चलजाई । जोहंग नाम तहँ पुर्ष रहाई ॥
हंसा तहाँ पयाना दीन्हा । जोहंग नाम तहँ बैठक कीन्हा ॥
तबही पुर्ष हंसतन हेरा । हंस प्रनाम कीन्ह तेहि बेरा ॥
तब पूरष दिलदाया कीन्हा । वचन आसिका हंसहि दीन्हा ॥
तब हंसा हिरदे हरषाई । हम पुरुषके दर्शन पाई ॥
चार असंख नौ पदुम प्रमाना । जोहंग नामके लोक बखाना ॥
श्वेत सरूप पुर्षकी काया । श्वेत वर्णसों लोक बनाया ॥
तबही पुर्ष हंस सँग लीन्हा । लोक दिखाय तासुको दीन्हा ॥
ताके परे विहंगम डोरी । मुक्तके मारग जाय जिव सोरी ॥
सो हंसाको दीन्ह लखाई । ताचढ़ हंसा लोक सिधाई ॥
आगे आदि पुर्ष निर्वाना । तहांको हंसा कीन्ह पयाना ॥

साखी–भांति अनेकन पुर्षसों, अस्तुत कीन्ह प्रनाम ।
आदिपुर्ष अवस्थानमों, हंसा कीन्ह पयान ॥

जबही हंसलोक नजिकाई । तबही देह हिरंमर पाई ॥
षोडश भान देह उजियारी । ऐसा रूप हंस तब धारी ॥
हंसा तबै तहां चल जाई । अक्षत पुर्ष तहाँ आप रहाई ॥
कमल अनंत पखूरी जानो । आदिपुर्ष जहाँ आसन ठानो ॥
पोहोप दीप तेहि नाम बखाना । सत्तपुर्ष कीन्हो अस्थाना ॥
सोई नाम निर्गम्य बखानी । अनंत नाम ताते प्रमानी ॥
ताको नाम हंस जो पाई । जीवन मुक्त हंस होय जाई ॥
सोई नाम जो सुमिरण करई । बिन तप भक्ति सो प्राणी तरई ॥
योजन अनंत लोक विस्तारा । आदिपुर्ष तहाँ करहि विहारा ॥
श्वेतहि वर्ण पुर्पकी काया । संपुट कमल देखिये छाया ॥
पुष्पहि धरनी तहाँ रहाई । जहाँ हंस सब राज कराई ॥
चारकरी सिंहासन जोरा । तहवां मध्य पुर्ष अंजोरा ॥
जगमग जोत अगिन उजियारा । बर्णत बने न अपरम्पारा ॥
हंस अनंतन बैठे तहवाँ । माथे मुकुट छत्रमणि जहवाँ ॥
षोडशभान हंस उजियारा । देह हिरंमर सो विस्तारा ॥
चंद न सूर दिवस नहिं राती । वर्ग अवर्ण न जात नहिं पांती ॥
माया कालकी तहाँ न छाया । अजर अमर हंसनकी काया ॥
पुरुषनाम अस्थान बतायो । आदिनामकी संध लखायो ॥
सोई नाम हंस जो पावै । योनी संकट बहुर न आवै ॥

साखी–आदि अमर अक्षत हैं, अबिगत अबिचल धाम ।
आदिपुरुष सो जानिये, रूप निहगम्मी नाम ॥

आदनाम मैं परकट भाषा । वर्णों मूल फूल फल साखा ॥
और नाम एक पुर्ष बखाना । विहंग नाम तासुको जाना ॥
सोतो रहे पुरुष दरबारा । ताको भेद मैं कहों विचारा ॥
अजपा सिद्धि देउँ बतलाई । ताको भेद कहों समझाई ॥

प्रथमें सोहंग पुर्ष बखाना । तामें अलख ब्रह्म पहिचाना ॥
निः अक्षर निःतत्त्व अधारा । तामह अर्ध पवन हंकारा ॥
सोहंग कार गगन अस्थाना । तामह पूरण ब्रह्म समाना ॥
तामह नाम निगम्य है सारा । सोहैं सबको सिरजन हारा ॥
तासों हंस लीन होय जाई । निःअशरमों रहे समाई ॥
सिंधुबुन्द तहँ एकै होई । दुनियाँभाव नाश होय सोई ॥
सोनिज अजपा है निर्वाना । आतम हंसा तहां समाना ॥
वोहंग कोहंग जोहंग नामा । सोहंग सुर्त निरन्तर धामा ॥
सोई नाम जीव रखवारा । अमी अत्र बिहंग विचारा ॥
आगे आदिनाम हम भाखा । ताकर नाम सो गुप्तहि राखा ॥
अंतर अजाप नाम सनेही । अमी सोहंग पुर्षकी देही ॥
लागी निरंजन बेहंगमतारी । अष्ट गगनकी खुली किवारी ॥
दहिनो अंग पुर्ष अस्थाना । तहवां हंसा कीन पयाना ॥
मकतार गहि हंस उड़ाई । आगे अकह कमल दरशाई ॥
कमल अनंत पंखुरी छाजै । आदिपुर्ष जहाँ आप विराजै ॥
श्वेत सिंहासन श्वेतहि काया । श्वेतहि पुर्ष श्वेतही छाया ॥
श्वेतछत्र शिर मुकुट बिराजै । भान अनंत शोभा तहाँ लाजै ॥
श्वेत चवर शीस फहराई । भान अनंत कला वहां छाई ॥
ऐसे निरगुण नाम अनूपा । महापुर्षसो आदि स्वरूपा ॥
नाम तेज बल सुमिरन पाई । महाकालते जीव छोडाई ॥
बहुर न होय जीवकी हानी । निश्चय सत्तपर्षको जानी ॥
यह मत निरगुण पावे कोई । जाको सतगुरु पूरा होई ॥
यह मत पाय अमर होय जाई । बहुर न जीव प्रलै तर आई ॥
सत्यनाम सतगुरु परतीती । हंसा चले तब भौजल जीती ॥
है सुकृत तुम संत सुजाना । तुमसों कहों मैं योग ठिकाना ॥

या विधि करनी करे बनाई । सत्त सिंधमो जाय सहाई ॥
ना फिर आवे ना फिर जाई । अजर अमर घर रहै समाई ॥
जीव बुद्ध नाश तब होई । ब्रह्म समाय ब्रह्म होय सोई ॥
ताकर संघ कहो निरवारी । हंस होय सो लेय विचारी ॥
यह तो भेद ना राखौ गोई । आदि योग मैं भाखों सोई ॥
अब मैं कहौं मंत्र उपदेशा । भाखो आदनामको भेषा ॥
गुप्त अंक लिख देउं बताई । पुस्तक देख लखो नहिं जाई॥

साखी–गुप्त भेदको मंत्र यह, वर्णोंअंक छपाय ।
सो अंतरमों जाप कर, ताको काल न खाय ॥
अजपाको मन ध्यान धर, सो यह मंत्र बखान ।
सो तो पुन अस्थिर भयो, बहुर न जीवकी हान ॥

मंत्र

बो सों जो को अ अ निः म वे कां त्र मी हं हं हं हं हं हं छे रू है सं हं म म नो ग नि पू प त अ हं ॥

हे सुकित तुम बडे विवेकी । तुमको बुद्ध सकल हस देखी ॥
ताते तुमको मंत्र सुनावा । जीव काजको शब्द लखावा ॥
सो तुम राखो गुप्त छिपाई । यह जनि कहो खोलके भाई ॥
यह निजमन्त्र प्रकट जो होइहै । विन करनी हंसा तर जैहै ॥
गुरमत पंथ चाल मिट जाई । ताते करनी कहि समुझाई ॥
योग ध्यान कुछ करनी कीजै । पीछे मंत्र जाप तेहि दीजै ॥
मंत्रपाय मन आपा आई । गुरुकी आसन राखे पाई ॥
तबे हंसको होय अकाजा । ताते कहो योगको साजा ॥
मंत्र जोर ते लोकै जाई । शोभा हीन हंस होय भाई ॥
षोडश भान हंस उजियारा । सो नरहै गतमंद विचारा ॥
मंत्र ध्यान अजपाको साधै । या विध सन्त ध्यान अवराधै ॥

तबही सुफल कामना होई। पहुँचे हंस लोकको सोई ॥
अजर हिरंमर देही पावै। योनी संकट बहुर न आवै ॥

साखी—जीव मुक्तको मंत्र यह, बर्णौ अंक छपाय।
ताको जप मनमों करे, ताको काल न खाय ॥

सुक्रित वचन—चौपाई

हो सतगुरु तुम मंत्र सुनायो। मेरो हृदै सांच अब आयो ॥
अब गुरु कहो लगनकी बानी। श्वासा लगन कैसे पहिचानी ॥
अलख मता है ताको साई। ताको भेद कहो समुझाई ॥
कैसो रंग लगनको होई। कारण भेद कहो प्रभु सोई ॥

साखी—जैसुन जगपत केतुकी, औ व्यालिन पहिचानी।
गुण प्रकाश लक्षण सहित, सतगुरु कहो बखानी ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो लगन बेवहारा। तुमसों भेद सब कहों बिचारा ॥
प्रथमे श्वासा ध्यान लगावे। ताको रंग दृष्टमों आवै ॥
पीतवर्ण तहां देखे जबहीं। अति हुलास मन आवे तबहीं ॥
उपजे सुख पीत रंग जानी। जगपति लगन पुन ताहि बखानी॥
अरु पुन श्वेतवर्ण लख आई। अस्थिर समाध रहे ठहराई ॥
उपजे सुख प्रेम भक्त अधिकारी। दया लीन तब सुर्त निहारी ॥
श्वेतभाव जब मनमों आवै। सोई जैसुन लगन कहावे ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई। श्वासा पवन श्वेत लख आई ॥
जल आकार पुन भासों जबहीं। उठे सुगंध श्वासमों तबहीं ॥
ध्यान बीच आकार न जाने। केतुकी लगन ताहि पहिचाने ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई। अरुणश्याम तहाँ भूमि लखाई॥
अहंकार मन शठता आवे। सुखनाश होय दुःख उपजावे ॥
इतना भावही देखे जाई। व्याल लगन कहावे भाई ॥

साखी-श्वासा मद्धे तत्त्व है, लगन तत्त्वके माहिं ।
योगीजन पहिचानि हैं, ज्ञानीजानत नाहिं ॥

प्रथमहि पृथीतत्त्वको पाई । तामें जगपति लगन मिलाई ॥
अष्टोदिशा गवन तब कीजै । सकलबिचारछांड़ तब दीजै ॥
अष्ट सिद्ध नव निद्धि कहाई । सो तो तहां सहजमों पाई ॥
मनमों इच्छा जाकी होई । सुफल कामना पावै सोई ॥
कोटिन कार्य सिद्धता पावै । सर्व जीत होय घर कोआवै ॥
मनमों हार न आवै कबही । ऐसी लगन बिचारे जबही ॥
सुरको सगुन एक गुन जानो । यह मत बिश्वावीश बखानो ॥
ताको भेद मैं दीन्ह बताई । सबे सिद्धको मूल लखाई ॥

साखी--जैतिक कारज जगतमों, चर औ अचर विचार ।
ते सब जानो सुफल है, कोट सिद्धको सार ॥

जैमुन लगन कहौं समुझाई । ताकर फल मैं देउँ बताई ॥
जलके पृथीतत्त्व दोय पावै । तामें जैमुन लगन पिलावै ॥
तबही ज्ञान करे जो कोई । सबै सिद्धता पावै सोई ॥
कब हूं न होवे तनमों पीरा । जीते युद्ध महा रणधीरा ॥
मनवांछित फल पावे सोई । जितने कार्य जगतमों होई ॥
एक सिद्धकी कौन चलावे । कोटिन सिद्ध तामें फल पावे ॥

साखी-नौ ग्रह घातिक दरसके, और योगिनी काल ।
लगन तत्त्व लखके चले, कारज होय ततकाल ॥
सुर औ तत्त्व बिचारके, तामह जैमुन होय ।
जौन वचन मुखसों कहे, सिद्ध जानिये सोय ॥

तीसर लगनको भेद बताऊँ । ताको अर्थ तब वर्ण सुनाऊँ ॥
जलके पृथी तत्त्व एक पावै । तामह लगन केतुकी आवै ॥
ताके जोर कार्यको जाई । सोतो कार्य मिले उठ धाई ॥

राजाराव मिलनको जाई । देखत ताहि सभा भहराई ॥
हाथ जोर आगे चलआई । बहुत भांति तेहि सेवा लाई ॥
कार्य सिद्ध तब जगमों जानो । चर अरु अचर जेते पहिचानो ॥
योग सिद्धके साधन कीजे । यह मत सुरत देख जब लीजे ॥

साखी—सर्व अर्थ मन कामना, आनन्द सकल हुलास ।
जेते सुख है जगतमों, सो सब ताके पास ॥

चौपाई

ब्याल लगन अब कहौ विचारी । सोतो युद्धकार्यको भारी ॥
दहिनों सुर पुन आवै जबही । ब्याल लगन कहावै तबही ॥
सो सो जाय लाखको मारै । सो संग्राम न कबहूँ हारै ॥
यम स्वरूप जब कटक दिखाई । देय शत्रु तब तुरत पराई ॥
याको दृष्टि भरि हेरै जबही । मानों काल गिरासे तबही ॥
मानों काल लीन्ह औतारा । या विधि ताको रूप निहारा ॥

साखी—ब्याल लगनको भेद यह, तुमसों कहों विचार ।
सिद्धिकार्य यामें नहीं, युद्ध जीत अहंकार ॥
जैमुन जगपत केतुकी, औ ब्यालिन पहिचान ।
अर्थ सहित गुण लगनको, तुमसों कहों बखान ॥
कोटि योगको योग है; कोटि ज्ञानको ज्ञान ।
कोटिसिद्धको सिद्ध है, कोटि ध्यानको ध्यान ॥
नौ षट चार अष्टदश, तैंतिस कोटि बखान ।
ताते मत आगे कहौं, महारूप विज्ञान ॥
योग ध्यान आक्षेप मत, आदि नाम ले जोय ।
उलट समानों आपमों, जीवन मुक्ता होय ॥
चार मुक्तके बीचमें, रहे अवध परमान ।
याते रहित बखानिये फिर नहिं आवाजान ॥

चली पूतरी नोनकी, थाह सिन्धुको लेन ।
आपन गल पानी भई, उलट कहेको बैन ॥

चौपाई

हे सुकित तुम हो बड़ ज्ञानी । तुम सो भेद अब कहों बखानी ॥
यह निरगुण मत राखो गोई । जगमों प्रगट न कीजै सोई ॥
यहतो अगम निगमकी बानी । ताको भेद जक्त नहि जानी ॥
अपनो काज गुप्त कर लीजै । ताको मर्म न काहू दीजै ॥
जाकह जानहु आप समाना । ताको यह मत कहो बखाना ॥
तुम आये जीवनके काजा । बासन जान बस्तधरो साजा ॥
कलियुगआदि द्वापरको अन्ता । निजमत तुमसों भाषो सन्ता ॥
यह तो तुम्हे सिखावन दीन्हा । तुमतो रहो नाम लौ लीन्हा ॥
ध्यान समाध करो चितलाई । आप अपनमों रहो समाई ॥
पुर्ष संध हृदयमों राखो । और ज्ञान प्रगटकर भाखो ॥
अब भौसागर करो पसारा । हम अब चले पुर्ष दरबारा ॥
आपन सुर्त नामसों लावो । भौसागरते जीव मुक्तावो ॥
जीवतपुर्ष सो पर्चै कीजै । ऐसो चित समाधमों दीजै ॥
बहुर मरे की रहे न आसा । जीवत करे लोकमों बासा ॥

साखी—जीवत समानो लोकमों, नहीं मरणकी आस ।
जीवन मुक्ता होय रहो, सत्तनाम पर्काश ॥
सिंधु समानो बुंदमों, बुन्दहि सिंधु समान ।
सिंधु बुन्द एकै भयो, बहुर न आवा जान ॥
अगम ज्ञान अक्षेत मत, आदि रूप विज्ञान ।
हेसुकृत निरगुण कथा, तुमसों कहौं बखान ॥

इति श्रीग्रन्थ पंचमुद्रा सुकृतो योगजीत संवादः सम्पूर्णः